॥ श्री आदिनाथाय नमः ॥

लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका

समस्त जैन शास्त्रों का मर्म समझने के लिए सिद्धान्तों का प्रतिपादक पारिभाषिक शब्द कोष

पण्डित श्री गुरु गोपालदास बरैया जी

प्रेरणा से–

पं. श्री सुमत जैन (इटावा)

मूल्य : आत्मअनुसंधान (तत्व-अभ्यास)

प्रकाशक

आत्म अनुसंधान ज्ञान गोष्ठी

(इटावा)

प्रथम संस्करण :— प्रति 1,000 वी.नि.सं. : २५४२
द्वितीय पुष्प दिनांक : 1.1.2016

प्रस्तुत संस्करण के प्रकाशन में नवीन शाहदरा (दिल्ली) की बहनों एवं भाइयों के द्वारा सहयोग राशि प्रदान की गई।

श्री प्रदीप जैन - संध्या जैन (गुड़गांव)
श्री विनीत जैन - सीमा जैन (नवीन शाहदरा)
श्री राकेश जैन - सुलेखा जैन (नवीन शाहदरा)
श्रीमति मधु जैन (नवीन शाहदरा)
श्रीमति अर्चना जैन (नवीन शाहदरा)
श्रीमति गरिमा जैन (नवीन शाहदरा)
श्रीमति कमलेश जैन (नवीन शाहदरा)
श्रीमति सुमन जैन (नवीन शाहदरा)
श्रीमति अन्जू जैन (नवीन शाहदरा)
श्रीमति कमल जैन (नवीन शाहदरा)
श्रीमति मधु जैन (नवीन शाहदरा)
श्रीमति माया जैन (सुपारी वाली) नवीन शाहदरा
श्रीमति निर्मला जैन ''
श्रीमति माया जैन ''
श्रीमति सरला जैन ''
श्रीमति सरोज जैन (ऋषभ विहार)
श्रीमति रतनमाला जैन (नवीन शाहदरा)

कुल प्राप्त राशि = 29,500/- रुपये

मुद्रक एवं टाईप सेटिंग

यूनिक ग्राफिक्स (आशीष जैन)

1/5717, गली नं. 16, बलवीर नगर,
शाहदरा, दिल्ली-110032
फोन : 8588824315, 9999926166

प्राप्ति स्थान

1. **श्री सुमत जैन**
   88, पंसारी टोला, इटावा (उ.प्र.)
   फोन : 9358457193
2. **श्री विकास जैन**
   एम 129, नवीन शाहदरा (जैन मंदिर के पास)
   दिल्ली-110032 फोन : 9313190402, 9910609109

विषय सूची

	विषय	प्रश्न	पृष्ठ
1.	पं. गोपालदास जी (जीवन वृत्त)		VI-XVII
2.	प्रस्तावना		XVIII-XXI
3.	प्रथम अध्याय	(1–111)	1–11
4.	द्वितीय अध्याय	(112–244)	12–23
5.	तृतीय अध्याय	(245–450)	24–46
6.	चतुर्थ अध्याय	(451–580)	47–59
7.	पंचम अध्याय	(581–669)	60–75
8.	ग्रंथकर्त्ता का अन्तिम वक्तव्य		76
9.	विषयानुक्रमाणिका		77–89

स्याद्वादवारिधि, वादिगजकेसरी, न्यायवाचस्पति
गुरूवर्य गोपालदास बरैया

बिना सिद्धांतों के मोक्ष मार्ग
में प्रवेश हो ही नहीं सकता

श्री सुमत जैन
(इटावा)

पण्डित श्री गुरू गोपालदास बरैया : जीवनवृत्त

स्व. श्री नाथू राम जी प्रेमी के संस्मरण से–

पण्डित जी का जन्म वि.स. 1923 के चैत्र में आगरे में हुआ था। आपके पिता का नाम 'लक्ष्मणदासजी' था। आपकी जाति 'बरैया' और गोत्र 'एछिया' था। आपका बाल्यकाल के विषय में हम विशेष कुछ नहीं जानते। इतना ही मालूम है कि आपके पिता की मृत्यु छुटपन में ही हो गई थी। आपकी माता की कृपा से आप मिडिल तक हिन्दी और छठी सातवीं तक अंग्रेजी पढ़ सके थे। बचपन में धर्म की ओर आपकी जरा भी रूचि नहीं थी। अंग्रेजी के पढ़े लिखे लड़के प्राय: जिस मार्ग के पथिक होते हैं। आप भी उसी पथ के पथिक थे। खेलना–कूदना, मजामौज, तम्बाकू, सिगरेट पीना, शेर और चौबोला गाना आदि आपके दैनिक कृत्य थे। 19 वर्ष की अवस्था में आपने अजमेर में रेलवे के दफ्तर में पन्द्रह रुपए महीने की नौकरी कर ली। उस समय आपको जैन धर्म से इतना भी प्रेम न था कि कम से कम जिन मन्दिर में दर्शन तो प्रतिदिन कर लिया करें। अजमेर में पण्डित मोहनलालजी नाम के एक जैन विद्वान थे। एक बार उनसे आपका जैन मन्दिर में परिचय हुआ। उनकी संगति से आपका चित्त जैन धर्म की ओर आकर्षित हुआ और आप जैन ग्रन्थों का स्वाध्याय करने लगे। दो वर्ष के बाद आपने रेलवे की नौकरी छोड़ दी और रायबहादुर सेठ मूलचन्दजी नेमिचन्दजी के यहाँ इमारत बनवाने के काम पर 20 रु. मासिक की नौकरी कर ली। आपकी ईमानदारी और होशियारी से सेठजी प्रसन्न रहे। अजमेर में आप 6, 7 वर्ष तक रहे। इस बीच आपका अध्ययन बराबर होता रहा। संस्कृत का ज्ञान भी आपको वहीं पर हुआ। वहाँ की जैन पाठशाला में आपने 'लघु कौमुदी' और 'जैनेन्द्रव्याकरण' का कुछ अंश और 'न्यायदीपिका' ये तीनों ग्रन्थ पढ़े थे। 'गोम्मटसार' का अध्ययन भी आपने उसी समय शुरू कर दिया था। अजमेर के सुप्रसिद्ध पण्डित मथुरादासजी और 'जैनप्रभाकर' के वास्तविक सम्पादक बाबू बैजनाथ जी से आपका बहुत मेल–जोल रहता था।

कुशल व्यापारी

संवत् 1948 में सेठ मूलचन्द जी जैन बद्री मूड़बद्री की यात्रा को निकले और आपको साथ लेते गए। लौटते समय आप बम्बई आए और यहाँ आपकी तबियत ऐसी लग गई कि फिर आपने यहीं रहने का निश्चय कर लिया। हिसाब-किताब के काम में आप बहुत तेज थे, इस कारण यहाँ आपको एस.जे. टेलरी नाम की यूरोपियन कम्पनी में 45 रु. मासिक की नौकरी मिल गई। आपके काम से कम्पनी के मालिक बहुत खुश रहते थे। उन्होंने थोड़े ही समय में आपका वेतन 60 रु. मासिक कर दिया। उसी समय आपकी माताजी का स्वर्गवास हो गया और आप बिना छुट्टी लिए ही आगरे चले गए। फल यह हुआ कि आपको नौकरी से हाथ धोना पड़ा। इसके बाद आप फिर बम्बई आए और जुहारूमल मूलचन्द जी की दुकान पर मुनीम हो गए। कुछ समय पीछे एस.जे. टेलरी ने आपको फिर रख लिया। अब की बारी आपने कई वर्ष तक यह काम किया। सं. 1951 में दिल्ली वाले लाला श्यामलालजी जौहरी के साथ आप जवाहरात की कमीशन एजेंट का काम करने लगे। इस काम को आपने कोई छः महीने तक किया, पर इसमें अपने अचौर्य और सत्यव्रत का पालन न होते देखकर आप इससे अलग हो गए और 'गोपालदास लक्ष्मणदास' के नाम से गल्ले का काम करने लगे। यथेष्ट लाभ न होने से पांच-छः महीने के बाद यह काम उठा लिया। सं. 52 में पण्डित धन्नालालजी काशलीवाल के साझे में आपने रुई, अलसी, चाँदी आदि की दलाली का काम करना शुरु किया और तीन-चार वर्ष तक जारी रखा। सं. 53 में इसी काम को आप स्वतन्त्र होकर करने लगे और दो वर्ष तक करते रहे।

बम्बई में सेठ नाथारंगजी गांधी के फर्म के मालिक सेठ रामचन्द्र नाथाजी से आपका अच्छा परिचय हो गया था। सेठजी बड़े ही सज्जन और धर्मात्मा थे। सं. 58 में आपके ही साझे में पण्डित जी ने मोरेना में आढ़त की दुकान खोल ली और बम्बई रहना छोड़ दिया। यह काम आपने कोई चार वर्ष तक किया। गांधी नाथारंगजी को जब मोरेना में लाभ नहीं दिखाई दिया, तब उन्होंने सं. 62 में शोलापुर बुला लिया और वहाँ आप लगभग दो वर्ष तक काम करते रहे। इसके बाद आप फिर मोरेना चले गए और वहाँ आपने सेठ हरिभाई देवकरण और सेठ रावजी नानचन्द्र की सहायता से 'गोपालदास माणिकचन्द्र' के नाम से स्वतन्त्र आढ़त की दुकान खोली। इस काम को करते हुए आपने

'माधव जीनिंग फैक्टरी लिमिटेड' की स्थापना की। इस काम में आपने बहुत परिश्रम किया, पर कई कारणों से आपको कोई दो वर्ष के बाद इससे सम्बन्ध छोड़ना पड़ा। इसके बाद आपने फिर गांधी नाथारंगजी के साथ काम किया। सं. 70, 71 में रायबहादुर सेठ कल्याणमल जी के और उनके बाद अभी दो वर्ष से आप रायबहादुर सेठ कस्तूरचन्द्रजी के साझे में काम करते थे।

सार्वजनिक जीवन

पण्डित जी के सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ बम्बई से होता है। यहाँ आपके और पं. धन्नालाल जी के उद्योग से मार्ग शीर्ष सुदी 14 सम्वत् 1949 को दिगम्बर जैन सभा की स्थापना हुई। पण्डित धन्नालाल जी आपके अनन्य मित्रों में से थे। लोग आप दोनों को 'दो शरीर एक प्राण' कहा करते थे। पण्डित धन्नालाल जी आपके प्रत्येक काम में प्रधान सहायक थे। इसी वर्ष के माघ में श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी की ओर से खुरई (सागर) की सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठा हुई। इतना बड़ा जनसमूह शायद ही किसी मेले में इकट्ठा हुआ होगा। दिगम्बर जैन समाज के प्राय: सभी धनी-मानी और पण्डित जन उपस्थित हुए थे। इस अवसर को बहुत ही उपयुक्त समझकर बम्बई सभा ने आपको और पण्डित धन्नालालजी को सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज की एक महासभा स्थापित करने के लिए खुरई भेजा। इसके लिए वहाँ यथेष्ट प्रयत्न किया गया, परन्तु यह जान कर कि जम्बू स्वामी मथुरा के मेले में महासभा की स्थापना का निश्चय हो चुका है, इन्हें लौट आना पड़ा। इसके बाद सं. 50 के जम्बूस्वामी के मेले में भी बम्बई सभा ने इन्हें भेजा और उनके उद्योग से वहां पर महासभा का कार्य शुरू हुआ। महासभा के महाविद्यालय के प्रारम्भ काम आपके ही द्वारा होता रहा है। सं. 53 के लगभग भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परीक्षालय स्थापित हुआ और उसका काम आपने बड़ी ही कुशलता से सम्पादित किया। इसके बाद आपने दिगम्बर जैन सभा बम्बई की ओर से जनवरी सं. 1900 में (सं. 53 के लगभग) 'जैनमित्र' निकालना शुरू किया। पण्डितजी की कीर्तिका मुख्य स्तम्भ 'जैनमित्र' है। यह पहले 6 वर्ष तक मासिक रूप में और फिर सं. 62 की कार्तिक सुदी से 2-3 वर्ष तक पाक्षिक रूप में पण्डितजी के सम्पादकत्व में निकलता रहा। सं. 1965 के 18वें अंक तक जैनमित्र की सम्पादकी में पण्डितजी का नाम रहा। इसकी दशा उस समय के तमाम पत्रों से अच्छी थी,

इस कारण इसका प्राय: प्रत्येक आन्दोलन सफल होता था। सं. 58 के आसोज में बम्बई प्रान्तिक सभा की स्थापना हुई और इसका पहला अधिवेशन माघ सुदी 8 को आकलूज की प्रतिष्ठा पर हुआ। इसके मन्त्री का काम पण्डितजी करते थे और आगे बराबर आठ दस वर्ष तक करते रहे। प्रान्तिक सभा के द्वारा संस्कृत विद्यालय बम्बई, परीक्षालय, तीर्थक्षेत्र, उपदेश भण्डार आदि के जो-जो काम होते रहे हैं, वे पाठकों से छिपे नहीं हैं।

बम्बई की दिगम्बर जैन पाठशाला सं. 50 में स्थापित हुई थी। यह पाठशाला अब भी चल रही है। पंडित जीवराम लल्लूराम शास्त्री के पास आपने परीक्षामुख, चन्द्रप्रभकाव्य और कातन्त्र व्याकरण इसी पाठशाला में पढ़ा था।

जैन सिद्धान्त विद्यालय

कुण्डलपुर महासभा के जलसे में यह सम्मति हुई कि महाविद्यालय सहारनपुर से उठाकर मोरेना में पंडितजी के पास भेज दिया जाए। परन्तु पंडितजी का वैमनस्य मुंशी चम्पतरायजी के साथ इतना बढ़ा हुआ था कि उन्होंने उनके अण्डर में रहकर इस काम को स्वीकार न किया। इसी समय उन्हें एक स्वतन्त्र जैन पाठशाला खोलकर काम करने की इच्छा हुई। आपके पास पं. वंशीधरजी कुण्डलपुर के मेले के पहले ही पढ़ते थे। अब दो-तीन विद्यार्थी और भी जैन सिद्धान्त का अध्ययन करने के लिए उनके पास जाकर रहने लगे। इन्हें छात्रवृत्तियाँ बाहर से मिलती थीं। पंडितजी केवल इन्हें पढ़ा देते थे। इसके बाद कुछ विद्यार्थी और भी आ गए और एक व्याकरण का अध्यापक रखने की आवश्यकता हुई, जिसके लिए सबसे पहले सेठ सूरचन्द्रजी शिवरामजी ने 30 रु. मासिक सहायता देना स्वीकार किया। धीरे-धीरे छात्रों की संख्या इतनी हो गई कि पंडितजी को उनके लिए नियमित पाठशाला की स्थापना करनी पड़ी। यही पाठशाला आज 'जैन सिद्धान्त विद्यालय' के नाम से प्रसिद्ध है और इसके द्वारा जैन धर्म के बड़े-बड़े ग्रन्थों के पढ़ने वाले अनेक पंडित तैयार हो गए हैं। पाठशाला के साथ में एक छात्राश्रम भी है। छात्राश्रम और पाठशाला के लिए एक अच्छी इमारत लगभग दस हजार रूपयों की लागत की बन गई है। पाठशाला और छात्राश्रम का वार्षिक खर्च उस समय कोई दस हजार रूपये था, यह सब रूपया पंडितजी चन्दे से वसूल करते थे।

उपाधियाँ

ग्वालियर स्टेट की ओर से पंडितजी को मोरेना में ऑनरेरी मजिस्ट्रेट का पद प्राप्त था। वहां के चेम्बर आफ कॉमर्स और पंचायत बोर्ड के भी आप मेम्बर थे। बम्बई प्रान्तिक सभा ने आपको 'स्याद्वाद वारिधि' इटावा की जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा ने आपको 'वादिगज केशरी' और कलकत्ते के गवर्नमेंट संस्कृत कालेज के पंडितों ने 'न्याय वाचस्पति' पदवी प्रदान की थी। सं. 1912 में दक्षिण महाराष्ट्र जैन सभा ने आपको वार्षिक अधिवेशन का सभापति बनाया था और आपका बहुत बड़ा सम्मान किया था।

अगाध पांडित्य

पंडितजी की पठित विद्या बहुत ही थोड़ी थी। जिस संस्कृत के वे पंडित कहलाए, उसका उन्होंने कोई एक भी व्याकरण अच्छी तरह नहीं पढ़ा था। गुरूमुख से तो उन्होंने बहुत ही थोड़ा नाम मात्र को पढ़ा था। तब वे इतने बड़े विद्वान कैसे हो गए? उसका उत्तर यह है कि उन्होंने स्वावलम्बनशीलता और निरन्तर अभ्यास से पाण्डित्य प्राप्त किया था। पंडितजी जीवन भर विद्यार्थी रहे। उन्होंने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया वह अपने ही अध्ययन के बल पर, और इस कारण उसका मूल्य रटे हुए या देखे हुए ज्ञान से बहुत अधिक था। उन्हें लगातार दस वर्ष तक बीसों विद्यार्थियों को पढ़ाना पड़ा और उनकी शंकाओं का समाधान करना पड़ा। विद्यार्थी प्रौढ़ थे, कई न्यायाचार्य और तर्कतीर्थों ने भी आपके पास पढ़ा है। इस कारण प्रत्येक शंका पर आपको घण्टों परिश्रम करना पड़ता था। जैन धर्म के प्राय: सभी बड़े-बड़े उपलब्ध ग्रन्थों को उन्हें आवश्यकताओं के कारण पढ़ना पड़ा। इसी का यह फल हुआ कि उनका पाण्डित्य असामान्य हो गया। वे न्याय और धर्मशास्त्र के बेजोड़ विद्वान हो गए और इस बात को न केवल जैनों ने, किन्तु कलकत्ते के बड़े-बड़े महामहोपाध्यायों और तर्कवाचस्पतियों ने भी माना। विक्रम की बीसवीं शताब्दि के आप सबसे बड़े दिगम्बर जैन पंडित थे, आपकी प्रतिभा और स्मरणशक्ति विलक्षण थी।

व्याख्यान कला

पंडितजी की व्याख्यान देने की शक्ति भी बहुत अच्छी थी। यह भी आपको अभ्यास के बल पर प्राप्त हुई थी आपके व्याख्यान में यद्यपि मनोरंजकता नहीं रहती थी और जैन सिद्धान्त के सिवाय अन्य विषयों पर आप बहुत ही

कम बोलते थे, फिर भी आप लगातार दो-दो, तीन-तीन घण्टे तक व्याख्यान दे सकते थे। आपके व्याख्यान विद्वानों के ही काम के हुआ करते थे। वाद या शास्त्रार्थ करने की शक्ति आप में बड़ी विलक्षण थी। जब जैन तत्व प्रकाशिनी सभा इटावे के दौरे शुरू हुए और उसने पंडितजी को अपना अगुआ बनाया, तब पंडितजी की इस शक्ति का खूब ही विकास हुआ। आर्यसमाज के कई बड़े-बड़े शास्त्रार्थ में आपकी वास्तविक विजय हुई और उस विजय को प्रतिपक्षियों ने स्वीकार किया। बड़े से बड़ा विद्वान् आपके आगे बहुत समय तक न टिक सकता था। आपको अपनी इस शक्ति का अभिमान था। कभी-कभी आप कहा करते थे कि मैं अमुक-अमुक महामहोपाध्यायों को भी बहुत जल्दी पराजित कर सकता हूं, परन्तु क्या करूँ उनके सामने घंटों तक धारा प्रवाह संस्कृत बोलने की शक्ति मुझमें नहीं है। पंडितजी संस्कृत में बातचीत कर सकते थे और अपने छात्रों के साथ तो वे घंटों बोला करते थे, परन्तु व्याकरण इतना पक्का नहीं था कि वे इसकी सहायता से शुद्ध संस्कृत के प्रयोग औरों के समाने निर्भय होकर करते रहे।

उनकी रचनाऐं

पंडितों को लिखने का अभ्यास प्रायः नहीं रहता है, पर पंडितजी इस विषय में अपवाद थे। उनमें अच्छी लेखनशक्ति थी। यद्यपि अन्यान्य कार्यों में फंसे रहने के कारण उनकी इस शक्ति का विकास नहीं हुआ, फिर भी हम उन्हें जैन समाज के अच्छे लेखक कह सकते हैं। उनके बनाए हुए तीन ग्रन्थ हैं- जैनसिद्धान्त दर्पण, सुशीला उपन्यास और जैन सिद्धान्त प्रवेशिका। 'जैन सिद्धान्त दर्पण' का केवल एक ही भाग है। यदि इसके आगे के भी भाग लिखे गए होते, तो जैन साहित्य में यह एक बड़े काम की चीज होती। यह पहला भाग भी बहुत अच्छा है। 'प्रवेशिका' जैन धर्म के विद्यार्थियों के लिए एक छोटे से पारिभाषिक कोश का काम देती है। इसका बहुत प्रचार है। सुशीला उपन्यास उस समय लिखा गया था, जब हिन्दी में अच्छे उपन्यासों का एक तरह से अभाव ही था और आश्चर्यजनक घटनाओं के बिना उपन्यास ही नहीं समझा जाता था। उस समय की दृष्टि से इसकी रचना अच्छे उपन्यासों में की जा सकती है। इसके भीतर जैन धर्म के कुछ गंभीर विषय डाल दिए गए हैं, जो एक उपन्यास में नहीं चाहिए थे, फिर भी वे बड़े महत्व के हैं। इन तीन

पुस्तकों के सिवाय पंडितजी ने सार्वधर्म, जैन जागरफी आदि कई छोटे-छोटे ट्रेक्ट भी लिखे थे।

चारित्रिक दृढ़ता

पंडितजी का चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल था। इस विषय में पंडित मंडली में अद्वितीय थे। उन्होंने अपने चरित्र से दिखला दिया था कि संसार में व्यापार भी सत्य और अचौर्यव्रत को दृढ़ रखकर किया जा सकता है। यद्यपि इन दो व्रतों के कारण उन्हें बार-बार असफलताऐं हुईं, फिर भी उन्होंने इन व्रतों को मरण पर्यन्त अखंड रखा। कड़ी परीक्षाओं में भी आप इन व्रतों से नहीं डिगे। एक बार मंडी में आग लगी और उसमें आपका तथा दूसरे व्यापारियों का माल जल गया। माल का बीमा बिका हुआ था। दूसरे लोगों ने बीमा कम्पनियों से इस समय खूब रूपये वसूल किये, जितना माल था उससे भी अधिक का बतला दिया। आपसे भी कहा गया। आप भी उस समय अच्छी कमाई कर सकते थे, पर आपने एक कौड़ी भी अधिक न ली। रेलवे और पोस्ट ऑफिस का यदि एक पैसा भी आपके यहाँ भूल से अधिक आ जाता था तो उसे वापिस किए बिना आपको चैन नहीं पड़ता था। रिश्चत देने का आपको त्याग था। इसके कारण आपको कभी-कभी बड़ा कष्ट उठाना पड़ता था, पर आप उसे चुपचाप सह लेते थे।

पंडितजी को कोई भी व्यसन नहीं था। खाने-पीने की शुद्धता पर आपको अत्यधिक ख्याल था। खाने-पीने की अनेक वस्तुऐं आपने छोड़ रखी थीं। इस विषय में आपका व्यवहार बिल्कुल पुराने ढंग का था। आपका रहन-सहन बहुत ही सादा था। कपड़े आप इतने मामूली पहनते थे कि अपरिचित लोग आपको कठिनाई से पहचान सकते थे।

धर्म कार्यों के द्वारा आपने अपने जीवन में कभी एक पैसा भी नहीं लिया। यहाँ तक कि इसके कारण आप अपने प्रेमियों को दुखी तक कर दिया करते थे, पर भेंट या विदाई तो क्या, एक दुपट्टा या कपड़े का टुकड़ा भी ग्रहण नहीं करते थे। हां, जो कोई बुलाता था, उससे आने-जाने का किराया ले लिया करते थे।

उत्साह और लगन

पंडितजी में गजब का उत्साह और गजब की काम करने की लगन थी।

पिछले दिनों में उनका शरीर बहुत ही शिथिल हो गया था, पर उनके उत्साह में जरा भी अन्तर नहीं पड़ा था। वे धुन के पक्के थे। जो काम उन्हें जच जाता था, उसे वे करके छोड़तें थे। उन्हें अपनी शक्तियों पर विश्वास था। इस कारण वे कठिन से कठिन काम में हाथ डाल देते थे। मोरेना में पाठशाला की इमारत उनके इसी गुण के कारण बनी थी। लोग नहीं चाहते थे कि मोरेना जैसे अयोग्य स्थान में इमारत जैसा स्थायी काम हो, पर उन्हें विश्वास था कि पाठशाला ध्रुव फंड एक लाख रूपये का हो जाएगा और तब मोरेना में भी पाठशाला का काम मजे से चलता रहेगा। कहते हैं कि पंडितजी अन्तिम समय यह कहते रहे कि यदि एक बार अच्छा हो जाऊं, तो एक लाख रूपया पूरा कर डालूं और फिर सुख से परलोक की यात्रा करूं।

निर्भीकता

पंडितजी जिस बात को सत्य मानते थे, उसके कहने में उन्हें जरा भी संकोच या भय नहीं होता था। खतौली के दस्सा और बीसा अग्रवालों के बीच में जो पूजा के अधिकार के सम्बन्ध में मामला चला था, उसमें आपने निर्भीक होकर साक्षी दी थी कि दस्सों को पूजा करने का अधिकार है। जैन जनता का विश्वास इससे बिल्कुल उल्टा था। परन्तु आपने इसकी जरा भी परवाह नहीं की। इस विषय को लेकर कुछ 'धर्मात्माओं' और 'सेठों' ने बड़ा ऊधम मचाया, पंडित जी को हर तरह से बदनाम करने की कोशिशें कीं, परन्तु अन्त में जनता ने पंडित जी के सत्य को समझ लिया और वह शान्त हो गई। इसके बाद 'मांसभोजी भी सम्यग्दृष्टि हो सकता है या नहीं' इस विषय में भी पंडितजी ने एक 'अप्रिय सत्य कहा था, और उस पर भी बड़ी उछल-कूद मची थी। इस विषय में वे जैन समाज के वर्तमान पंडितों से बहुत ऊंचे थे। हमने प्रतिष्ठाऐं कराने वाले एक प्रतिष्ठित पंडितजी को छापे के विरोधी धनियों के सामने छापे की घोर निन्दा करते और छापे वालों के सामने उसी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते देखा है। ऐसे लोग वही बात कहते हैं, जो लोगों को अच्छी लगती है, पर पंडितजी बड़े निर्भीक थे। चापलूसी और खुशामद से उन्हें चिढ़ थी। वे बड़े-बड़े लखपतियों और करोड़पतियों को उनके मुँह पर खरी-खरी सुना दिया करते थे। इसी स्वभाव के कारण अनेक धनी उनके शत्रु बन गए थे।

प्रगाढ़ श्रद्धा

जैन ग्रंथों पर पंडितजी की प्रगाढ़ श्रद्धा थी, बल्कि सत्य के अनुरोध से कहना पड़ेगा कि जरूरत से ज्यादा थी। एक बार आपने जोश में आकर यहाँ तक कह डाला कि यदि कोई पुरुष जैन भूगोल को असत्य सिद्ध कर देगा, तो मैं उसी दिन जैन धर्म का परित्याग कर दूंगा। इससे पाठक जान सकेंगे कि उनकी श्रद्धा कितनी ऊंची चढ़ी हुई थी। इस श्रद्धा के अतिरेक के कारण ही जैन पाठशालाओं के कोर्स के द्वार पर 'दिगम्बर जैन धर्म से अविरूद्ध' की मजबूत अर्गला लगाई गई थी। पंडितजी नहीं चाहते थे कि किसी भी जैन पाठशाला में कोई ऐसी पुस्तक पढ़ाई जाए जो जैन धर्म के विरूद्ध हो। उन्होंने अपने विद्यालय में भूगोल, इतिहास आदि विषयों को कभी जारी नहीं होने दिया। अज़ैनों के संस्कृत ग्रन्थ भी, यहाँ तक व्याकरण, काव्य, नाटक आदि भी पढ़ाना पसन्द न था। काशी की पाठशाला के विद्यार्थी गवर्नमेंट की संस्कृत परीक्षा के ग्रन्थ पढ़ा करते थे। इस पर पंडितजी ने जैन मित्र में 'काशी का कटुक फल' शीर्षक बड़ा ही कड़ा लेख लिखा था। सिद्धान्त विद्यालय के किसी भी विद्यार्थी ने विद्यायल में रहते हुए कोई भी सरकारी परीक्षा नहीं दी।

आजकल के पंडितों को हम जीते-जागते या सजीव शास्त्र समझते हैं। उन्हें शास्त्र याद भर रहता है, विचार करना वे नहीं जानते। जड़ शास्त्रों से जो उपकार होता है, वही उपकार इनसे होता है, इससे अधिक नहीं। पर पंडितजी इस विषय में अपवाद थे। वे अच्छे विचारक थे। वे अपनी विचार-शक्ति के बल पर पदार्थ का स्वरूप इस ढंग से बतलाते थे कि उसमें एक नूतनता मालूम होती थी। उन्होंने जैन सिद्धान्त की ऐसी अनेक गाठें सुलझाईं थीं, जो इस समय के किसी भी विद्वान से नहीं खोली जा सकती थी। वे गोम्मटसार के प्रसिद्ध टीकाकार पं. टोडरमलजी की भी कई सूक्ष्म भूलें बतलाने में समर्थ हुए थे। जैन भूगोल के विषय में उन्होंने जितना विचार किया था और इस विषय को सच्चा समझाने के लिए जो-जो कल्पनाऐं की थीं, वे बड़ी ही कुतूहलवर्धक थीं। एक बार उन्होंने उत्तर-दक्षिण ध्रुवों की छः महीने की रात दिन को भी जैन भुगोल के अनुसार सत्य सिद्ध करने का यत्न किया था। वर्तमान के यूरोप आदि देशों को उन्होंने भरत क्षेत्र में ही सिद्ध किया था और शास्त्रोक्त लम्बाई-चौड़ाई से वर्तमान का मेल न खाने का कारण पृथ्वी का वृद्धि-ह्रास या घटना-बढ़ना 'भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ' आदि सूत्र के आधार से बतलाया था। यदि पंडितजी

के विचारकों का क्षेत्र केवल अपने ग्रंथों की ही परिधि के भीतर कैद न होता, सारे ही जैन ग्रन्थों को प्राचीनों और अर्वाचीनों को वे केवली भगवान की ही दिव्यध्वनि के सदृश न समझते होते, तो वे इस समय के एक अपूर्व विचारक होते, उनकी प्रतिभा जैन धर्म पर एक अपूर्व ही प्रकाश डालती और उनके द्वारा जैन समाज का आशातीत कल्याण होता।

निस्वार्थ सेवा

पंडितजी की प्रतिष्ठा और सफलता का सबसे बड़ा कारण उनकी नि:स्वार्थ सेवा का या परोपकारशीलता का भाव था। एक इसी गुण से वे इस समय के सबसे बड़े जैन पंडित कहलाए। जैन समाज के लिए उन्होंने अपने जीवन में जो कुछ किया उसका बदला कभी नहीं चाहा। जैन धर्म की उन्नति हो, जैन सिद्धान्त के जानने वालों की संख्या बढ़े, केवल इसी भावना से उन्होंने निरन्तर परिश्रम किया। अपने विद्यालय का प्रबंध सम्बन्धी तमाम काम करने के सिवाय अध्यापन कार्य भी उन्हें करना पड़ता था। हमने देखा कि शायद ही कोई दिन ऐसा जाता होगा जिस दिन पंडितजी को अपने कम-से-कम चार घंटे विद्यालय के लिए न देने पड़ते हों। जिन दिनों पंडितजी का व्यापार सम्बन्धी काम बढ़ जाता था और उन्हें समय नहीं मिलता था, उस मसय बड़ी भारी थकावट हो जाने पर भी वे कभी-कभी 10,11 बजे रात को विद्यालय में आते थे। गत कई वर्षों से पंडितजी का शरीर बहुत शिथिल हो गया था। फिर भी धर्म के काम के लिए वे बड़े-बड़े लम्बे सफर करने से भी नहीं चूकते थे। अभी भिण्ड के मेले के लिए जब आप गए, तब आपका स्वास्थ्य बहुत ही चिंतनीय था और वहां जाने से ही, इसमें संदेह नहीं कि आपकी घटिका का जल्दी आ गई।

पंडितजी नि:स्वार्थ वृत्ति और दयानतदारी पर लोगों को दृढ़ विश्ववास था। सही कारण है जो बिना किसी स्थिर आमदनी के थे विद्यालय के लिए लगभग दस हजार रूपया साल की सहायता प्राप्त कर लेते थे।

कोटुम्बिक विपदाऐं

पंडितजी को, जहाँ तक हम जानते हैं कुटुम्बसंबंधी सुख कभी प्राप्त नहीं हुआ। इस विषय में हम उन्हें ग्रीस के प्रसिद्ध विद्वान सुकरात के समकक्ष समझते हैं। पंडितानीजी का स्वभाव बहुत ही कर्कश, क्रूर, कठोर, जिद्दी

और अर्धविक्षिप्त था। जहाँ पंडितजी को लोग देवता समझते थे, वहां पंडितानीजी उन्हें कोड़ी काम का आदमी नहीं समझती थी। वे उन्हें बहुत तंग करती थीं और इस बात का जरा भी खयाल न रखती थीं कि मेरे बर्तावे से पंडितजी को कितनी अप्रतिष्ठा होती होगी। कभी-कभी पंडितानीजी का धावा विद्यालय पर भी होता था और उस समय छात्रों तक की शामत आ जाती थी। अभी पंडितजी जब आगरे में बहुत ही सख्त बीमार थी, तब पंडितानीजी की विक्षिप्तता इतनी बढ़ गई कि छात्रों को उनके आक्रमण से पंडितजी का जीवन बचाना भी कठिन हो गया था। वे बड़ी मुश्किल से पिंड छुड़ाकर उन्हें अपने घर से बेलनगंज ले गए थे। सारा समाज आज जिनके लिए रो रहा है, उनके लिए पंडितानीजी की आंख से शायद एक आंसू भी न पड़ा होगा। इस अप्रिय कथा के उल्लेख करने का कारण यह है कि पंडितजी इस निरन्तर यातना को, कलह को, उपद्रव को बड़ी धीरता से बिना उद्वेग के भोगते थे और अपने कर्तव्यों में जरा भी शिथिलता नहीं आने देते थे और यह पंडितजी का अनन्य साधारण गुण था। सुकरात की स्त्री खिसियानी हुई बैठी थी, सुकरात कई दिन के बाद घर आए। खाने-पीने की वस्तुओं का इन्तजाम किए बिना ही वे घर से चले गए थे और कहीं लोकोपकारी व्याख्यानादि देने में लगकर घर की चिन्ता भूल गए थे। पहले तो श्रीमती ने बहुत सा गर्जन-तर्जन किया, पर जब उसका कोई भी फल नहीं हुआ तब उसका वेग निःसीम हो गया और उसने बर्फ जैसा पानी का एक घड़ा उस शीतकाल में सुकरात के ऊपर औंधा कर दिया। सुकरात ने हँसकर कह दिया कि गर्जन के बाद वर्षण तो स्वाभाविक ही है। पंडितजी यहाँ इस प्रकार की घटनायें, यद्यपि वे लिखने में इतनी मनोरंजन नहीं है अक्सर हुआ करती थीं और पंडित जी उन्हें सुकरात के ही समान चुपचाप सहन किया करते थे।

विद्यालय से पंडितजी को बहुत मोह हो गया था। उसे तो वे अपना सर्वस्व समझते थे। पंडितजी बड़े ही स्वाभिमानी थे। किसी से एक पैसे की भी याचना करना उनके स्वभाव के विरूद्ध था। शुरू-शुरू में जब मैं सिद्धान्त विद्यालय का मंत्री था, पंडितजी विद्यालय के लिए सभाओं में सहायता मांगने के सख्त विरोधी थे, पर पीछे पंडितजी का यह सख्त अभिमान विद्यालय के वात्सल्य की धारा में गल गया और उसके लिए 'भिक्षा देहि' कहने में भी उन्हें संकोच नहीं होने लगा।

अन्य विशेषताऐं

पंडितजी बहुत सीधे और भोले थे। उनके भोलेपन से धूर्त लोग अक्सर लाभ उठाया करते थे। एकाग्रता का उन्हें बहुत ही ज्यादा अभ्यास था। चाहे जैसे कोलाहल और अशान्ति के स्थान में वे घण्टों तक विचारों में लीन रह सकते थे। स्मरणशक्ति भी उनकी बड़ी विलक्षण थी। बरसों की बातें वे अक्षरशः याद रख सकते थे। विदेशी रीति रिवाजों से उन्हें अरूचि थी। जब तक कोई बहुत जरूरी काम न पड़ता था तब तक वे अंग्रेजों का उपभोग नहीं करते थे। हिन्दी से उन्हें बहुत ही ज्यादा प्रेम था। अन्य पंडितों के समान वे इसे तुच्छ दृष्टि से नहीं देखते थे। उनके विद्यालय की लायब्रेरी में हिन्दी की अच्छी-अच्छी पुस्तकों का संग्रह है। पंडितजी बड़े देशभक्त थे। 'स्वदेशी' आन्दोलन के समय आपने 'जैनमित्र' के द्वारा जैन समाज में अच्छी जागृति उत्पन्न की थी।

मनुष्य के स्वभाव और चरित्र का अध्ययन करना बहुत कठिन है और जब तक यह न किया जाए, तब तक किसी पुरुष का चरित्र नहीं लिखा जा सकता। पंडितजी सहवास में थोड़े समय (छः-सात महीने) रहकर हमने उनके विषय में जो कुछ जाना था उसी को यहाँ सिलसिले से लिख दिया है।

❀ ❀ ❀

प्रस्तावना

शुद्धात्म नमः

यह 'लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। इस का नाम लघु इसलिए है कि जैन दर्शन में इसको जाने बिना प्रवेश पाना मुश्किल है। जैन दर्शन में आत्मा को जानना ही मुख्य उद्देश्य है।

आत्मा एक द्रव्य है और वह द्रव्य अरूपी है और वह द्रव्य पुद्गल के साथ मिला है, दूध और पानी की तरह मिला है। आत्मा आँख अर्थात् इन्द्रियों से दिखाई नहीं देता है और आत्मा को देखना ही सार है। इस संसार में जैन दर्शन ही इस बात को जानता है कि अरूपी को अर्थात् जीव को कैसे प्राप्त किया जाए इस बात को कोई दर्शन नहीं जानता है। जैन दर्शन इस बात को क्यों जानता है ? वह बात इस छोटे से ग्रन्थ में पण्डित श्री गोपालदास जी वरैया के द्वारा लिखी गई है। इस ग्रन्थ को पढ़कर समझ में आता है कि पण्डित जी साहब कितने महान विद्वान थे। इस ग्रन्थ में आत्मा को जानना किस क्रम से होता है। वह बात निम्न अनुसार है।

लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में पाँच अधिकार हैं। प्रथम अधिकार बहुत ही महत्वपूर्ण अधिकार है। इसके बिना अरूपी आत्मा को नहीं जाना जा सकता है। आत्मा एक द्रव्य है। जो इन्द्रियों के द्वारा जाना नहीं जा सकता है क्योंकि आत्मा अरूपी द्रव्य है। हमको इन्द्रियों द्वारा ज्ञान होता है। इस बात का खुलासा इस ग्रन्थ में 'मैं कौन हूँ' इस बात को जानने के लक्षण अर्थात् आत्मा को अर्थात् मुझे जानने के उपाय चार हैं। लक्षण, प्रमाण, नय, निक्षेप।

'लक्षण' का मतलब है कि लक्षण दो प्रकार के हैं। एक 'आत्मभूत' और दूसरा लक्षण 'अनात्मभूत' यह दोनों लक्षण आत्मा के ही हैं अर्थात् मेरे ही हैं। एक लक्षण अनात्मभूत वो है जो इन्द्रियों से दिखता है। वह अनात्मभूत है। वह शरीर का है। जहाँ ये शरीर है। (नोकर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म) वहाँ नियम से जीव हैं। अर्थात् मैं जीव हूँ। और जीव है। वो जानने वाला है। अर्थात्

ज्ञानस्वरूप है क्योंकि शरीर का मुझे ज्ञान है। अर्थात् मैं जीव हूँ और जानने वाला हूँ अर्थात् मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। अब इस अनात्मभूत लक्षण का कमाल देखिए कि इस लक्षण से जो इन्द्रियों से जानने में आ रहा है। उसी लक्षण से मैं जीव हूँ और ज्ञानस्वरूप हूँ। यह बात जानने में आने लगी और जो दूसरा लक्षण है। वो लक्षण आत्मभूत है। वह चेतन स्वरूप है। इस लक्षण से जानने में आया कि मैं चेतन स्वरूप हूँ। अर्थात् मैं जीव हूँ। जीव है सो ज्ञानस्वरूप है और ज्ञानस्वरूप है वो चेतन स्वरूप है। चेतन की चेतना में अनात्मभूत लक्षण जानने में आ रहा है और आत्मभूत भी जानने में आ रहा है और चेतना में स्व पर प्रकाश शक्ति है। इसमें स्व पर का प्रकाश हो रहा है अर्थात् 'मैं' ना जीव रूप हो रहा हूँ ना पर रूप हो रहा हूँ इसीलिए॥ मैं शुद्धचैतन्य हूँ॥

इस प्रकार की समझ इस पुस्तक में पहले अधिकार से प्राप्त होती है। इसी प्रकार प्रमाण नय, निक्षेप भी है। इनके द्वारा भी आत्मा की प्राप्ति हो जाती है।

यह बात आदरणीय पण्डित जी के ज्ञान की बहुत बड़ी विशेषता है। इसलिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद है। लेकिन कितने ही विद्वान कहलाने वाले महानुभावों ने इस ग्रन्थ को इतना छोटा कर दिया कि इसके प्रथम अधिकार को इस ग्रन्थ में से निकाल दिया ये बहुत बड़ा दुर्भाग्य है।

दूसरे अधिकार में जीव द्रव्य, पुद्गल द्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्य ये छः द्रव्य बताए हैं। जीव द्रव्य के बारे में एक बात बहुत उपयोगी बताई है। जीव की पाँच अवस्थाएँ होती हैं। मतिज्ञान, श्रुतिज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पयर्य ज्ञान, केवलज्ञान। हम सब संसारी जीवों को मति ज्ञान और श्रुतिज्ञान है। मतिज्ञान चार तरह से होता है। वह इस प्रकार है। अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा। यह पाँचों इन्द्रियों तथा मन से होता है। उसमें अवग्रह दो प्रकार से होता है। पहला अर्थाअवग्रह, दूसरा व्यंजना अवग्रह। अर्था अवग्रह व्यक्त पदार्थ का होता है। इसमें पांचों इन्द्रियाँ और मन अर्थात् अवग्रह, ईया, अवाय, धारणा इससे ज्ञान होता है।

व्यजंना अवग्रह केवल अव्यक्त पदार्थ का ही होता है। जिसमें मन और चक्षु को छोड़कर बाकी इन्द्रियों से होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि अव्यक्त पदार्थ का अर्थात् आत्मा का केवल अवग्रह ही होता है और वह छूट जाता है। अर्थात् ईहा, अवाय, धारणा होता ही नहीं है।

इस बात का सारांश यह है कि आत्मा अव्यक्त पदार्थ है और इसका

केवल अवग्रह ही होता है जो छूट जाता है। धारणा में पहुँचता ही नहीं है। इस कारण आत्मा की जानकारी होती ही नहीं है। क्योंकि अवग्रह, ईया, अवाय, धारणा जब तक नहीं होगी तब तक श्रुत ज्ञान काम नहीं करता है और जो व्यक्त पदार्थ शरीर है। उसके चारों (अवग्रह, ईया, अवाय, धारणा) होते हैं। इसलिए शरीर मैं हूँ ये मिथ्या भाव नहीं छूटता है इसका मूलकारण लक्षण का ज्ञान ना होना है क्योंकि जब तक मैं शुद्ध चैतन्य हूँ ये बात न्याय युक्ति से धारणा में नहीं जाएगी तब तक श्रुतज्ञान काम नहीं करेगा अर्थात् आत्मअनुभव नहीं होगा। इस बात का खुलासा इसमें अनात्मभूत लक्षण से हो जाता है।

अब तीसरे अधिकार में यह बताया है कि आत्मा और शरीर दोनों साथ मिले हुए हैं। अर्थात् भगवान आत्मा इस शरीर में विराजमान है। उसका खुलासा इस प्रकार किया है।

इसमें खास बात यह है कि यह 'आत्मा' अर्थात् 'मैं' अनादि से इस शरीर में विराजमान हूँ। आत्मा का कोई भी प्रदेश अर्थात् मेरा प्रदेश शरीर रूप नहीं होता है और शरीर का कोई भी परमाणु जीव रूप नहीं होता है। इस बात का सार यह है। जीव अर्थात् मैं हमेशा शुद्ध रहता हूँ (तत्वार्थसूत्र 2/7) अब शुद्ध आत्मा तो समझ में आ गया, अब शुद्ध आत्मा निकालने की विधि सरल हो जाती है।

चौथे अधिकार में 53 भावों की चर्चा है। इसमें 52 भाव पौदगलिक है। अर्थात् इन भावों में हम कहाँ हैं। ये बात बतलाई है। इन 53 भावों में हमारी खोज है और वह खोज इस प्रकार है। पारिणामिक भाव तीन प्रकार का है। पारिणामिक भाव, भवयत्व, अभवयत्व पारिणामिक हैं। औदायिक भाव 21 हैं। चार गति, चार कषाय, तीन वेद, छः लेश्या, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व, क्षयोपशम 18 भेद 10 उपयोग (कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान, कुअवधि ज्ञान) ये तीन कुज्ञान चार सुज्ञान मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान, तीन दर्शन–चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन, पाँच निद्रा, क्षयोपशम लब्धि–दान, लाभ, भोग, उपयोग, वीर्य, क्षयोपशमिक सम्यक्त्व, क्षयोपशमिक चारित्र ऐसे ये 18 भेद हैं। तीसरा औपशमिक भाव, औपशमिक सम्यक्त्व, औपशमिक चारित्र पाँचवा क्षायिक भाव के नौ भेद केवल दर्शन, केवल ज्ञान, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, पाँच क्षायिक लब्धि दान, लाभ, भोग उपभोग, वीर्य ऐसे नौ भेद इस प्रकार 3 + 21 +18 + 2 + 9= ये 53 भाव इस प्रकार हैं। अब इन भावों में अपने को खोजना है। पहला भाव 'जीवत्व' है। वह चार गतियों

में है। अब जो जीव है वह मनुष्य गति में है। जहाँ कषायों का उदय है वहाँ नियम से जीव है। ज्ञान से देखे तो कुमति ज्ञान, कुश्रुति ज्ञान में भी जीव है। अगर क्षयोपशम लब्धि में देखें तो वह भी जीव है। जीव है वो ज्ञानस्वरूप है। 'गति' का भी ज्ञान है। 'कषाय' का भी ज्ञान है 'क्षयोपशमिक' भाव का भी ज्ञान है। इसीलिए मैं ज्ञान स्वरूप हूँ। ज्ञानस्वरूप है और इन पौद्गलिक भावों को जान रहा है। जानने वाला अलग है, ये भाव अलग है। अर्थात् मैं जीव हूँ। ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञानस्वरूप है, वो चेतन स्वरूप है। चेतन में 'स्व-पर-प्रकाशक' भाव है। ये भाव स्व-पर प्रकाशक भाव है। इस भाव में स्व-पर दोनों जानने में आते हैं। लेकिन उन रूप नहीं होते (अर्थात् स्व का अर्थ जीव पर अर्थात् 52 भाव) इसलिए मैं शुद्ध चेतन हूँ। ये चौथे अधिकार का सारांश है।

पांचवे अधिकार का खास विषय है कि प्रत्येक जीव सुखी होना चाहता है। लेकिन सुख नाम का गुण आत्मा में है। जो अह्लाद रूप है और एक गुण ऐसा है। वह पुद्गल का गुण है वेदनीय। वह वेदनीय दो प्रकार से कार्य करता है। एक साता रूप, एक असाता रूप। जब साता का उदय होता है तब शरीर निरोग होना और इन्द्रियों की सामग्री अनुकूल मिलना होता है। असाता के उदय में शरीर में रोग होना, बाह्य इन्द्रियों की सामग्री प्रतिकूल मिलना।

इस प्रकार ये गुण पौद्गलिक है और इस गुण में सुख नहीं है। भ्रमवश इसी को सुख समझते हैं। क्योंकि आत्मा के सुख गुण के ऊपर ये वेदनीय का आवरण है। इसीलिए आत्मा का सुख दिखाई नहीं देता और भ्रम वश इसी सुख को सुख मानते हैं।

''लघु सिद्धान्त प्रवेशिका'' के अन्तिम अधिकार में वह सुख कैसे प्राप्त हो इस बात का खुलासा आत्मभूत और अनात्मभूत लक्षण के द्वारा किया गया है।

इस प्रकार इस छोटे से ग्रन्थ में द्वादशांग बहुत बृहद् विषय है। उसमें से पांच अधिकारों में... प्रश्न लिखे गए हैं। प्रश्नों द्वारा मैं कौन हूँ। इस बात को बताया गया है।

आदणीय पण्डित श्री गोपाल दास बरैया जी ने इस ग्रन्थ की मध्य प्रदेश के भिण्ड नगर में रचना की है। ये भिण्ड वासियों के लिए बहुत गौरव की बात है।

धन्यवाद,

शुद्धात्मचिन्तक

सुमत जैन
(इटावा, यू.पी.)
9358457593

णमोकार महामंत्र

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आईरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं

ऐसो पंच णमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसि, पढ़मं हवई मंगलं।।

श्री परमात्मने नमः।

श्रीजैनसिद्धान्तप्रवेशिका

नत्वा जिनेन्द्रं गतसर्वदोषं
सर्वज्ञदेवं हितदेशकं च।
श्रीजैनसिद्धान्तप्रवेशिकेयं
विरच्यते स्वल्पधियां हिताय।।

प्रथमोध्यायः ।

प्र. १. पदार्थों को जानने के कितने उपाय हैं?

उ. १. चार उपाय हैं-लक्षण, प्रमाण, नय और निक्षेप।

प्र. २. लक्षण किसको कहते हैं?

उ. २. बहुत से मिले हुए पदार्थों में से किसी एक पदार्थ के जुदे करने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं। जैसे जीवका लक्षण चेतना।

प्र. ३. लक्षण के कितने भेद हैं?

उ. ३. दो भेद हैं-एक आत्मभूत दूसरा अनात्मभूत।

प्र. ४. आत्मभूतलक्षण किसको कहते हैं?

उ. ४. जो वस्तु के स्वरूप में मिला हो। जैसे अग्निका लक्षण उष्णपना।

प्र. ५. अनात्मभूतलक्षण किसको कहते हैं?

उ. ५. जो वस्तु के स्वरूप में मिला न हो। जैसे-दंडी पुरूष का लक्षण दंड।

प्र. ६. लक्षणाभास किसको कहते हैं?

उ. ६. जो लक्षण सदोष हो।

प्र. ७. लक्षण के दोष कितने हैं?

उ. ७. तीन हैं-अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव।

प्र. ८. लक्ष्य किसको कहते हैं?

उ. ८. जिसको लक्षण किया जाय, उसको लक्ष्य कहते हैं।

प्र. ९. अव्याप्तिदोष किसको कहते हैं?

उ. ९. लक्ष्य के एकदेश में लक्षण के रहने को अव्याप्तिदोष कहते हैं। जैसे पशुका लक्षण सींग।

प्र. १०. अतिव्याप्तिदोष किसको कहते हैं?

उ. १०. लक्ष्य और अलक्ष्य में लक्षण के रहने को अतिव्याप्तिदोष कहते हैं। जैसे- गौ का लक्षण सींग।

प्र. ११. अलक्ष्य किसको कहते हैं?

उ. ११. लक्ष्य के सिवाय दूसरे पदार्थों को अलक्ष्य कहते हैं।

प्र. १२. असम्भव दोष किसको कहते हैं?

उ. १२. लक्ष्य में लक्षण की असंभवता को असम्भव दोष कहते हैं।

प्र. १३. प्रमाण किसको कहते हैं?

उ. १३. सच्चे ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

प्र. १४. प्रमाण के कितने भेद हैं?

उ. १४. दो भेद हैं, एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष।

प्र. १५. प्रत्यक्ष किसको कहते हैं?

उ. १५. जो पदार्थ स्पष्ट जाने।

प्र. १६. प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं?

उ. १६. दो भेद हैं–एक सामव्यवहारिक प्रत्यक्ष दूसरा पारमार्थिक प्रत्यक्ष।

प्र. १७. सामव्यवहारिक प्रत्यक्ष किसको कहते हैं?

उ. १७. जो इन्द्रिय और मन की सहायता से पदार्थ को एकदेश स्पष्ट जाने।

प्र. १८. पारमार्थिक प्रत्यक्ष किसको कहते हैं?

उ. १८. जो बिना किसी की सहायता के पदार्थ को स्पष्ट जाने।

प्र. १९. पारमार्थिकप्रत्यक्ष के कितने भेद हैं?

उ. १९. दो भेद हैं–एक विकलपारमार्थिक, दूसरा सकलपारमार्थिक।

प्र. २०. विकलपारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं?

उ. २०. जो रूपी पदार्थों को बिना किसी की सहायता के स्पष्ट जाने।

प्र. २१. विकलपारमार्थिक प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं?

उ. २१. दो भेद हैं–एक अवधिज्ञान, दूसरा मनःपर्ययज्ञान।

प्र. २२. अवधिज्ञान किसको कहते हैं?

उ. २२. द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा लिये जो रूपी पदार्थ को स्पष्ट जाने।

प्र. २३. मनःपर्ययज्ञान किसको कहते हैं?

उ. २३. द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा लिये हुए जो दूसरे के मन में तिष्ठते

हुए रूपी पदार्थ को स्पष्ट जाने।

प्र. २४. सकलपारमार्थिक प्रत्यक्ष किसको कहते हैं?

उ. २४. केवलज्ञान को।

प्र. २५. केवलज्ञान किसको कहते हैं?

उ. २५. जो त्रिकालवर्त्ती समस्त पदार्थों को युगपत् (एकसाथ) स्पष्ट जाने।

प्र. २६. परोक्ष प्रमाण किसे कहते हैं?

उ. २६. जो दूसरे की सहायता से पदार्थ को स्पष्ट जाने।

प्र. २७. परोक्ष प्रमाण के कितने भेद हैं?

उ. २७. पांच हैं–स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम।

प्र. २८. स्मृति किसको कहते हैं?

उ. २८. पहिले अनुभव किये हुए पदार्थ के याद करने को स्मृति कहते हैं।

प्र. २९. प्रत्यभिज्ञान किसको कहते हैं?

उ. २९. स्मृति और प्रत्यक्ष के विषयभूत पदार्थों में जोड़ रूप ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। जैसे–यह वही मनुष्य है, जिसे कल देखा था।

प्र. ३०. प्रत्यभिज्ञान के कितने भेद हैं?

उ. ३०. एकत्वप्रत्यभिज्ञान, सादृश्यप्रत्यभिज्ञान आदि अनेक भेद हैं।

प्र. ३१. एकत्वप्रत्यभिज्ञान किसको कहते हैं?

उ. ३१. स्मृति और प्रत्यक्ष के विषयभूत पदार्थ में एकता दिखाते हुए जोड़रूप ज्ञान को एकत्वप्रत्यभिज्ञान कहते हैं। जैसे–यह वही मनुष्य है, जिसे कल देखा था।

प्र. ३२. सादृश्यप्रत्यभिज्ञान किसको कहते हैं?

उ. ३२. स्मृति और प्रत्यक्ष के विषयभूत पदार्थों में सादृश्य दिखाते हुए जोड़ रूप ज्ञान को सादृश्यप्रत्यभिज्ञान कहते हैं। जैसे–यह गौ गवयके (रोझके) सदृश है।

प्र. ३३. तर्क किसको कहते हैं?

उ. ३३. व्याप्ति के ज्ञान को तर्क कहते हैं।

प्र. ३४. व्याप्ति किसको कहते हैं?

उ. ३४. अविनाभावसंबन्ध को व्याप्ति कहते हैं।

प्र. ३५. अविनाभावसबंन्ध किसको कहते हैं?

उ. ३५. जहाँ २ साधन (हेतु) होय, वहां २ साध्य का होना, और जहाँ २ साध्य नहीं होय, वहां २ साधन के भी न होने को अविनाभावसंबंध कहते हैं।

जैसे-जहाँ जहाँ धूम है, वहां २ अग्नि है और जहाँ २ अग्नि नहीं है, वहां २ धूम भी नहीं है।

प्र. ३६. साधन किसको कहते हैं?

उ. ३६. जो साध्य के बिना न होवै। जैसे-अग्नि हेतु (साधन) धूम।

प्र. ३७. साध्य किसको कहते हैं?

उ. ३७. इष्ट अबाधित असिद्ध को साध्य कहते हैं।

प्र. ३८. इष्ट किसको कहते हैं?

उ. ३८. वादी और प्रतिवादी जिसको सिद्ध करना चाहे, उसको इष्ट कहते हैं।

प्र. ३९. अबाधित किसको कहते हैं?

उ. ३९. जो दूसरे प्रमाण से बाधित न हो। जैसे-अग्नि का ठंडापन प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है, इस कारण यह ठंडापन साध्य नहीं हो सकता।

प्र. ४०. असिद्ध किसको कहते हैं?

उ. ४०. जो दूसरे प्रमाण से सिद्ध न हो, उसे असिद्ध कहते हैं। अथवा जिसका निश्चय न हो, उसे असिद्ध कहते हैं।

प्र. ४१. अनुमान किसको कहते हैं?

उ. ४१. साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं।

प्र. ४२. हेत्वाभास (साधनाभास) किसको कहते हैं?

उ. ४२. सदोष हेतु को।

प्र. ४३. हेत्वाभास के कितने भेद हैं?

उ. ४३. चार हैं-असिद्ध, विरूद्ध, अनैकान्तिक (व्यभिचारी) और अकिंचित्कर।

प्र. ४४. असिद्धहेत्वाभास किसको कहते हैं?

उ. ४४. जिस हेतु के अभाव का (गैरमौजूदगीका) निश्चय हो, अथवा उसके सद्भाव में (मौजूदगी में) संदेह (शक) हो, उसको असिद्धहेत्वाभास कहते हैं। जैसे-''शब्द नित्य है। क्योंकि-नेत्रका विषय है।'' परंतु शब्द कर्णका विषय है, नेत्रका नहीं हो सकता, इस कारण ''नेत्रका विषय'' यह हेतु असिद्धहेत्वाभास है।

प्र. ४५. विरूद्धहेत्वाभास किसको कहते हैं?

उ. ४५. साध्य से विरूद्ध पदार्थ के साथ जिसकी व्याप्ति हो, उसको विरूद्धहेत्वाभास कहते हैं। जैसे-''शब्द नित्य है। क्योंकि-परिणामी है।'' इस अनुमान में परिणामीकी व्याप्ति अनित्य के साथ है, नित्य के साथ नहीं है। इसलिए नित्यत्व का ''परिणामी हेतु'' विरूद्धहेत्वाभास

है।

प्र. ४६. अनैकान्तिक (व्यभिचारी) हेत्वाभास किसको कहते हैं?

उ. ४६. जो हेतु पक्ष, सपक्ष, विपक्ष इन तीनों में व्यापै, उसको अनैकान्तिकहेत्वाभास कहते हैं। जैसे– ''इस कोठे में धूम है। क्योंकि-इसमें अग्नि है।'' यहाँ अग्नित्व हेतु पक्ष, सपक्ष, विपक्ष, तीनों में व्यापक होने से अनैकान्तिकहेत्वाभास है।

प्र. ४७. पक्ष किसको कहते हैं?

उ. ४७. जहाँ साध्य के रहने का शक हो। जैसे ऊपर के दृष्टान्त में कोठा।

प्र. ४८. सपक्ष किसको कहते हैं?

उ. ४८. जहाँ साध्य के सद्भाव का (मौजूदगी का) निश्चय हो। जैसे-धूमका सपक्ष गीले ईंधन से मिली हुई अग्निवाला रसोईघर है।

प्र. ४९. विपक्ष किसको कहते हैं?

उ. ४९. जहाँ साध्य के अभाव का (गैर मौजूदगी का) निश्चय हो। जैसे-अग्नि से तपा हुआ लोहे को गोला।

प्र. ५०. अकिंचित्कर हेत्वाभास किसको कहते हैं?

उ. ५०. जो हेतु कुछ भी कार्य (साध्य की सिद्धि) करने में समर्थ न हो।

प्र. ५१. अकिंचित्करहेत्वाभास के कितने भेद हैं?

उ. ५१. दो हैं-एक सिद्धसाधन, दूसरा बाधितविषय।

प्र. ५२. सिद्धसाधन किसको कहते हैं?

उ. ५२. जिस हेतु का साध्य सिद्ध हो। जैसे-अग्नि गर्म है। क्योंकि स्पर्श इंद्रिय से ऐसा ही प्रतीत होता है।

प्र. ५३. बाधितविषयहेत्वाभास किसको कहते हैं?

उ. ५३. जिस हेतु के साध्य में दूसरे प्रमाण से बाधा आवै।

प्र. ५४. बाधितविषयहेत्वाभास के कितने भेद हैं?

उ. ५४. प्रत्यक्षबाधित, अनुमानबाधित, आगमबाधित, स्ववचनबाधित, आदि अनेक भेद हैं।

प्र. ५५. प्रत्यक्षबाधित किसको कहते हैं?

उ. ५५. जिस हेतु के साध्य में प्रत्यक्ष से बाधा आवै। जैसे ''अग्नि ठंडी है। क्योंकि यह द्रव्य है।'' तो यह हेतु प्रत्यक्षबाधित है।

प्र. ५६. अनुमानबाधित किसको कहते हैं?

उ. ५६. जिसके साध्य में अनुमान से बाधा आवै। जैसे ''घास आदि कर्त्ता की

बनाई हुई है। क्योंकि ये कार्य हैं।'' परंतु इसमें इस अनुमान से बाधा आती है कि घास आदि किसी की बनाई हुई नहीं है। क्योंकि इनका बनाने वाला शरीरधारी नहीं है। जो-जो शरीर धारी की बनाई हुई नहीं हैं, वे २ वस्तुएँ कर्त्ता की बनाई हुई नहीं है। जैसे-आकाश।

प्र. ५७. आगमबाधित किसको कहते हैं?

उ. ५७. शास्त्र से जिसका साध्य बाधित हो, उसको आगमबाधित कहते हैं। जैसे-पाप सुख का देने वाला है। क्योंकि यह कर्म है। जो-जो कर्म होते हैं, वे वे सुख के देने वाले होते हैं। जैसे-पुण्यकर्म। इसमें शास्त्र से बाधा आती है। क्योंकि शास्त्र में पाप को दु:ख देने वाला लिखा है।

प्र. ५८. स्ववचनबाधित किसको कहते हैं?

उ. ५८. जिसके साध्य में अपने वचन से ही बाधा आवै। जैसे- मेरी माता बन्ध्या है क्योंकि पुरुष का संयोग होने पर भी उसके गर्भ नहीं रहता।

प्र. ५९. अनुमान के कितने अंग हैं?

उ. ५९. पाँच हैं। प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन।

प्र. ६०. प्रतिज्ञा किसको कहते हैं?

उ. ६०. पक्ष और साध्य के कहने को प्रतिज्ञा कहते हैं। जैसे- ''इस पर्वत में अग्नि है।''

प्र. ६१. हेतु किसको कहते हैं?

उ. ६१. साधन के वचन को (कहने को) हेतु कहते हैं। जैसे- ''क्योंकि ये धूमवान् है।''

प्र. ६२. उदाहरण किसको कहते हैं?

उ. ६२. व्याप्तिपूर्वक दृष्टान्त के कहने को उदाहरण कहते हैं। जैसे- जहाँ २ धूम हैं वहाँ २ अग्नि है। जैसे रसोई का घर। और जहाँ २ अग्नि नहीं है, वहाँ २ धूम भी नहीं है। जैसे तालाब।

प्र. ६३. दृष्टान्त किसको कहते हैं?

उ. ६३. जहाँ पर साध्य और साधन की मौजूदगी का गैरमौजूदगी दिखाई जाए। जैसे-रसोई का घर अथवा तालाब।

प्र. ६४. दृष्टान्त के कितने भेद हैं।

उ. ६४. दो हैं-एक अन्वयदृष्टान्त, दूसरा व्यतिरेक दृष्टान्त।

प्र. ६५. अन्वयदृष्टान्त किसको कहते हैं?

उ. ६५. जहाँ साधन की मौजूदगी में साधन की मौजूदगी दिखाई जाए। जैसे-

रसोई के घर में धूम का सद्भाव होने पर अग्नि का सद्भाव दिखाया गया।

प्र. ६६. व्यतिरेकदृष्टान्त किसको कहते हैं?

उ. ६६. जहाँ साध्य की गैरमौजूदगी में साधन की गैर मौजूदगी दिखाई जाए। जैसे–तालाब।

प्र. ६७. उपनय किसको कहते हैं?

उ. ६७. पक्ष और साधन में दृष्टान्त की सदृशता दिखाने को उपनय कहते हैं। जैसे–यह पर्वत भी वैसा ही घूमवान है।

प्र. ६८. निगमन किसको कहते हैं?

उ. ६८. नतीजा निकालकर प्रतिज्ञा के दोहराने को निगमन कहते हैं। जैसे– इसलिए यह पर्वत भी अग्निवान है।

प्र. ६९. हेतु के कितने भेद हैं?

उ. ६९. तीन हें–केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी, अन्वयव्यतिरेकी।

प्र. ७०. केवलान्वयी हेतु किसको कहते हैं?

उ. ७०. जिस हेतु में सिर्फ अन्वयदृष्टान्त हो। जैसे–जीव अनेकान्तस्वरूप है। क्योंकि सत्स्वरूप है। जो जो सतस्वरूप होता है, वह २ अनेकान्तस्वरूप होता है। जैसे–पुद्गलादिक।

प्र. ७१. केवलव्यतिरेकी हेतु किसको कहते हैं?

उ. ७१. जिसमें सिर्फ व्यतिरेक दृष्टांत पाया जावे। जैसे जिन्दा शरीर में आत्मा है। क्योंकि इसमें श्वासोच्छ्वास है। जहाँ-जहाँ आत्मा नहीं होता, वहाँ-वहाँ श्वासोच्छ्वास भी नहीं होता। जैसे–चौकी वगैरह।

प्र. ७२. अन्वयव्यतिरेकी हेतु किसको कहते हैं?

उ. ७२. जिसमें अन्वय दृष्टान्त और व्यतिरेकी दृष्टान्त दोनों हों। जैसे पर्वत में अग्नि है। क्योंकि इसमें धूम है। जहाँ २ धूम है, वहाँ २ अग्नि होती है। जैसे रसोई का घर। जहाँ २ अग्नि नहीं है, वहाँ २ धूम भी नहीं है। जैसे तालाब।

प्र. ७३. आगमप्रमाण किसको कहते हैं?

उ. ७३. आप्त के वचन आदि से उत्पन्न हुए पदार्थ के ज्ञान को आगम प्रमाण कहते हैं।

प्र. ७४. आप्त किसको कहते हैं?

उ. ७४. परम हितोपदेशक सर्वज्ञदेव को 'आप्त' कहते हैं।

प्र. ७५. प्रमाण का विषय क्या है?

उ. ७५. सामान्य अथवा धर्मी तथा विशेष अथवा धर्म दोनों अंशों का समूहरूप वस्तु प्रमाण का विषय है।

प्र. ७६. विशेष किसको कहते हैं?

उ. ७६. वस्तु के किसी खास अंश अथवा हिस्से को विशेष कहते हैं।

प्र. ७७. विशेष के कितने भेद हैं?

उ. ७७. दो हैं—एक सहभावी विशेष, दूसरा क्रमभावी विशेष।

प्र. ७८. सहभावी विशेष किसको कहते हैं?

उ. ७८. वस्तु के पूरे हिस्से और उसकी सब अवस्थाओं में रहने वाले विशेष को सहभावी विशेष अथवा गुण कहते हैं।

प्र. ७९. क्रमभावी विशेष किसको कहते हैं

उ. ७९. क्रम से होने वाले वस्तु के विशेष को क्रमभावी विशेष अथवा पर्याय कहते हैं।

प्र. ८०. प्रमाणाभास किसको कहते हैं?

उ. ८०. मिथ्याज्ञान को प्रमाणाभास कहते हैं।

प्र. ८१. प्रमाणाभास कितने हैं?

उ. ८१. तीन हैं—संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय।

प्र. ८२. संशय किसको कहते हैं?

उ. ८२. विरुद्ध अनेक कोटी स्पर्श करने वाले ज्ञान को संशय कहते हैं। जैसे—यह सीप है या चांदी?

प्र. ८३. विपयर्य किसको कहते हैं?

उ. ८३. विपरीत एक कोटी के निश्चय करने वाले ज्ञान को विपर्यय कहते हैं। जैसे—सीप को चांदी जानना।

प्र. ८४. अनध्यवसाय किसको कहते हैं?

उ. ८४. 'यह क्या है?' ऐसे प्रतिभास को अनध्यवसाय कहते हैं। जैसे मार्ग चलते हुए तृण वगैरह का ज्ञान।

प्र. ८५. नय किसको कहते हैं?

उ. ८५. वस्तु के एक देश को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं।

प्र. ८६. नय के कितने भेद हैं?

उ. ८६. दो हैं, एक निश्चयनय दूसरा व्यवहारनय तथा उपनय।

प्र. ८७. निश्चयनय किसको कहते हैं?

उ. ८७. वस्तु के किसी असली अंश के ग्रहण करने वाले ज्ञान को निश्चयनय कहते हैं। जैसे—मिट्टी के घड़े को मिट्टी का घड़ा कहना।

प्र. ८८. व्यवहारनय किसको कहते हैं?

उ. ८८. किसी निमित्त वश से एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ रूप जानने वाले ज्ञान को व्यवहारनय कहते हैं। जैसे—मिट्टी के घड़े को घी के रहने के निमित्त से घी का घड़ा कहना।

प्र. ८९. निश्चयनय के कितने भेद हैं?

उ. ८९. दो हैं—एक द्रव्यार्थिक नय दूसरा पर्यायार्थिक नय।

प्र. ९०. द्रव्यार्थिक नय किसको कहते हैं?

उ. ९०. जो द्रव्य अर्थात् सामान्य को ग्रहण करे।

प्र. ९१. पर्यायार्थिकनय किसको कहते हैं?

उ. ९१. जो विशेष को (गुण अथवा पर्याय को) विषय करे।

प्र. ९२. द्रव्यार्थिकनय के कितने भेद हैं?

उ. ९२. तीन हैं—नैगम, संग्रह, व्यवहार।

प्र. ९३. नैगम नय किसको कहते हैं?

उ. ९३. दो पदार्थों में से एक को गौण और दूसरे को प्रधान करके भेद अथवा अभेद को विषय करने वाला ज्ञान नैगमनय है तथा पदार्थ के संकल्प को ग्रहण करने वाला ज्ञान नैगमनय है। जैसे—कोई आदमी रसोई में चावल लेकर चुनता था। किसी ने उससे पूछा कि क्या कर रहे हो? तब उसने कहा कि भात बना रहा हूँ। यहाँ चावल और भात में अभेदविविक्षा है। अथवा चावलों में भात का संकल्प है।

प्र. ९४. संग्रहनय किसको कहते हैं?

उ. ९४. अपनी जाति का विरोध नहीं करके अनेक विषयों का एकपने से जो ग्रहण करे, उसको संग्रहनय कहते हैं। जैसे—जीव के कहने से चारों गीत के सब जीवों का ग्रहण होता है।

प्र. ९५. व्यवहारनय किसको कहते हैं?

उ. ९५. जो संग्रहलय से ग्रहण किए हुए पदार्थों में विधिपूर्वक भेद करे, सो व्यवहारनय है। जैसे जीव के भेद त्रस और स्थावर आदि करना।

प्र. ९६. पर्यायार्थिकनय के कितने भेद हैं?

उ. ९६. चार हैं—ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ एवम् भूतनय।

प्र. ९७. ऋजुसूत्रनय किसको कहते हैं?

उ. ९७. भूत भविष्यत की अपेक्षा न करके वर्तमान पर्याय मात्र को जो ग्रहण करे, सो ऋजुसूत्रनय है।

प्र. ९८. शब्दनय किसको कहते हैं?

उ. ९८. लिंग, कारक, वचन, काल, उपसर्गादिक के भेद से जो पदार्थ को भेदरूप ग्रहण करे, सो शब्दनय है। जैसे—दारा, भार्या, कलत्र ये तीनों भिन्न २ लिंग के शब्द एक ही स्त्रीपदार्थ के वाचक हैं। सो यह नय स्त्रीपदार्थ को तीन भेदरूप ग्रहण करता है। इसी प्रकार कारकादिक के भी दृष्टान्त जानने।

प्र. ९९. समभिरूढ़नय किसको कहते हैं?

उ. ९९. लिंगादिक का भेद न होने पर भी पर्याय शब्द के भेद से जो पदार्थ को भेदरूप ग्रहण करे। जैसे—इन्द्र, शक्र, पुरन्द्र ये तीनों एक ही लिंग के पर्यायवाची शब्द देवराज के वाचक हैं। सो यह नय देवराज को तीन भेदरूप ग्रहण करता है।

प्र. १००. एवंभूतनय किसको कहते हैं?

उ. १००. जिस शब्द का जिस क्रियारूप अर्थ है, उसी क्रियारूप परिणमे पदार्थ को जो ग्रहण करे, सो एवंभूतनय है। जैसे—पुजारी को पूजा करते वक्त ही पुजारी कहना।

प्र. १०१. व्यवहारनय या उपनय के कितने भेद हैं?

उ. १०१. तीन हैं—सद्भूत व्यवहारनय, असद्भूत व्यवहारनय और उपचरित व्यवहारनय अथवा उपचरिता सद्भूत व्यवहारनय।

प्र. १०२. सद्भूत व्यवहारनय किसको कहते हैं?

उ. १०२. एक अखंडद्रव्य को भेदरूप विषय करने वाले ज्ञान को सद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। जैसे—जीव के केवल ज्ञानादिक वा मतिज्ञानादिक गुण हैं।

प्र. १०३. असद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं?

उ. १०३. जो मिले हुए भिन्न पदार्थों को अभेदरूप ग्रहण करै। जैसे—यह शरीर मेरा है अथवा मिट्टी के घड़े को घी का घड़ा कहना।

प्र. १०४. उपचरितव्यवहार नय अथवा उपचरित असद्भूत व्यवहारनय किसको कहते हैं?

उ. १०४. अत्यन्त भिन्न पदार्थों को जो अभेदरूप ग्रहण करे। जैसे हाथी, घोड़ा, महल, मकान मेरे हैं इत्यादि।

प्र. १०५. निक्षेप किसको कहते हैं?

उ. १०५. युक्ति कर के सुयुक्त मार्ग होते हुए कार्य के वश से नाम स्थापना द्रव्य और भाव में पदार्थ के स्थापन को निक्षेप कहते हैं।

प्र. १०६. निक्षेप के कितने भेद हैं?

उ. १०६. चार हैं—नामनिक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेप।

प्र. १०७. नामनिक्षेप किसको कहते हैं?

उ. १०७. जिस पदार्थ में जो गुण नहीं है, उसको उस नाम से कहना। जैसे किसी ने अपने लड़के का नाम हाथी सिंह रखा है। परन्तु उसमें हाथी और सिंह दोनों के गुण नहीं हैं।

प्र. १०८. स्थापनानिक्षेप किसको कहते हैं?

उ. १०८. साकार अथवा निराकार पदार्थ में वह यह है, इस प्रकार स्थापन करके निवेश करने को स्थापना निक्षेप कहते हैं। जैसे—पार्श्वनाथ के प्रतिबिम्ब को पार्श्वनाथ कहना अथवा सतरंज के मोहरों को हाथी, घोड़ा कहना।

प्र. १०९. नामनिक्षेप और स्थापनानिक्षेप में क्या भेद है?

उ. १०९. नामनिक्षेप में मूलपदार्थ की तरह सत्कार आदि की प्रवृत्ति नहीं होती परन्तु स्थापना निक्षेप में होती है। जैसे—किसी ने अपने लड़के का नाम पार्श्वनाथ रख लिया, तो उस लड़के का सत्कार पार्श्वनाथ की तरह नहीं होता। परन्तु पार्श्वनाथ की प्रतिमा का होता है।

प्र. ११०. द्रव्यनिक्षेप किसको कहते हैं?

उ. ११०. जो पदार्थ आगामी परिणाम की योग्यता रखने वाला हो, उसको द्रव्यनिक्षेप कहते हैं—जैसे राजा के पुत्र को राजा कहना।

प्र. १११. भावनिक्षेप किसको कहते हैं?

उ. १११. वर्तमान पर्याय संयुक्त वस्तु को भावनिक्षेप कहते हैं। जैसे राज्य करते हुए पुरुष को राजा कहना।

इति प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

❀ ❀ ❀

अथ द्वितीयोऽध्यायः प्रारभ्यते।

प्र. ११२. द्रव्य किसे कहते हैं?

उ. ११२. गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।

प्र. ११३. गुण किसको कहते हैं?

उ. ११३. द्रव्य के पूरे हिस्से में और उसकी सब हालतों में जो रहे, उसको गुण कहते हैं।

प्र. ११४. गुण के कितने भेद हैं?

उ. ११४. दो हैं—एक सामान्य दूसरा विशेष।

प्र. ११५. सामान्य गुण किसको कहते हैं?

उ. ११५. जो सब द्रव्यों में व्यापै, उसको सामान्य गुण कहते हैं।

प्र. ११६. विशेष गुण किसको कहते हैं?

उ. ११६. जो सब द्रव्यों में न व्यापै, उसको विशेष गुण कहते हैं।

प्र. ११७. सामान्यगुण कितने हैं?

उ. ११७. अनेक हैं—लेकिन उनमें ६ गुण मुख्य हैं।
जैसे—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व।

प्र. ११८. अस्तित्वगुण किसको कहते हैं?

उ. ११८. जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कभी नाश न हो, उसको अस्तित्व गुण कहते हैं।

प्र. ११९. वस्तुत्वगुण किसको कहते हैं?

उ. ११९. जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में अर्थक्रिया हो, उसको वस्तुत्वगुण कहते हैं। जैसे—घड़े की अर्थक्रिया जलधारण है।

प्र. १२०. द्रव्यत्वगुण किसको कहते हैं?

उ. १२०. जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य सर्वदा एक सा न रहे और जिसकी पर्यायें (हालतें) हमेशा बदलती रहें।

प्र. १२१. प्रमेयत्वगुण किसको कहते हैं?

उ. १२१. जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान को विषय हो,

उसको प्रमेयत्व गुण कहते हैं।

प्र. १२२. अगुरुलघुत्वगुण किसको कहते हैं?

उ. १२२. जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य की द्रव्यता कायम रहे अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमे और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमे तथा एक द्रव्य के अनेक या अनन्त गुण बिखरकर जुदे २ न हो जावें, उसको अगुरुलघुत्वगुण कहते हैं।

प्र. १२३. प्रदेशत्वगुण किसको कहते हैं?

उ. १२३. जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कुछ न कुछ आकार अवश्य हो।

प्र. १२४. द्रव्य के कितने भेद हैं?

उ. १२४. छह भेद हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल।

प्र. १२५. जीवद्रव्य किसको कहते हैं?

उ. १२५. जिसमें चेतना गुण पाया जाए, उसको जीवद्रव्य कहते हैं।

प्र. १२६. पुद्गल द्रव्य किसको कहते हैं?

उ. १२६. जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण पाए जाएँ।

प्र. १२७. पुद्गल द्रव्य के कितने भेद हैं?

उ. १२७. दो भेद हैं—एक परमाणु दूसरा स्कन्ध।

प्र. १२८. परमाणु किसको कहते हैं?

उ. १२८. सबसे छोटे पुद्गल को परमाणु कहते हैं।

प्र. १२९. स्कन्ध किसको कहते हैं?

उ. १२९. अनेक परमाणुओं के बन्ध को स्कन्ध कहते हैं।

प्र. १३०. बन्ध किसको कहते हैं?

उ. १३०. अनेक चीजों में एकपने का ज्ञान कराने वाले सम्बन्धविशेष को बन्ध कहते हैं।

प्र. १३१. स्कन्ध के कितने भेद हैं?

उ. १३१. आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा, कार्माणवर्गणा आदि २२ भेद हैं।

प्र. १३२. आहारवर्गणा किसको कहते हैं?

उ. १३२. औदारिक, वैक्रियक, आहारक, इन तीन शरीररूप जो परिणमै, उसको आहारवर्गणा कहते हैं।

प्र. १३३. औदारिक शरीर किसको कहते हैं?

उ. १३३. मनुष्य, तिर्यंच के स्थूल शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

प्र. १३४. वैक्रियक शरीर किसको कहते हैं?

उ. १३४. जो छोटे बड़े एक अनेक आदि नाना क्रियाओं को करें, ऐसे देव और नारकियों के शरीर को वैक्रियक शरीर कहते हैं।

प्र. १३५. आहारक शरीर किसको कहते हैं?

उ. १३५. छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनिके तत्त्वों में कोई शंका होने पर केवली या श्रुतकेवली के निकट जाने के लिए मस्तक में से जो एक हाथ का पुतला निकलता है, उसको आहारक शरीर कहते हैं।

प्र. १३६. तैजसवर्गणा किसको कहते हैं?

उ. १३६. औदारिक और वैक्रियक शरीरों में कान्ति देने वाला तैजस शरीर जिस वर्गणा से बने, उसको तैजसवर्गणा कहते हैं।

प्र. १३७. भाषावर्गणा किसको कहते हैं?

उ. १३७. जो शब्दरूप परिणमै, उसको भाषावर्गणा कहते हैं।

प्र. १३८. कार्माणवर्गणा किसको कहते हैं?

उ. १३८. जो कार्माण शरीररूप परिणमै, उसको कार्माण वर्गणा कहते हैं।

प्र. १३९. कार्माण शरीर किसको कहते हैं?

उ. १३९. ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों के समूह को कार्माण शरीर कहते हैं।

प्र. १४०. तैजस और कार्माणशरीर किसके होते हैं?

उ. १४०. सब संसारी जीवों के तैजस और कार्माण शरीर होते हैं।

प्र. १४१. धर्मद्रव्य किसको कहते हैं?

उ. १४१. गतिरूप परिणमे जीव और पुद्गल को जो गमन में सहकारी हो, उसको धर्मद्रव्य कहते हैं। जैसे–मछली के लिए जल।

प्र. १४२. अधर्मद्रव्य किसको कहते हैं?

उ. १४२. गतिपूर्वक स्थितिरूप परिणमे जीव और पुद्गल को जो स्थिति में सहकारी हो, उसको अधर्म द्रव्य कहते हैं।

प्र. १४३. आकाश द्रव्य किसको कहते हैं?

उ. १४३. जो जीवादिक पाँच द्रव्यों को ठहरने के लिए जगह दे।

प्र. १४४. कालद्रव्य किसको कहते हैं?

उ. १४४. जो जीवादिक द्रव्यों के परिणमन में सहकारी हो, उसको कालद्रव्य कहते हैं। जैसे–कुम्हार के चाक के घूमने के लिए लोहे की कीली।

प्र. १४५. कालद्रव्य के कितने भेद हैं?

उ. १४५. दो हैं–एक निश्चयकाल दूसरा व्यवहारकाल।

प्र. १४६. निश्चयकाल किसको कहते हैं?

उ. १४६. कालद्रव्य को निश्चयकाल कहते हैं?

प्र. १४७. व्यवहारकाल किसको कहते हैं?

उ. १४७. कालद्रव्य की घड़ी, दिन, मास आदि पर्यायों को व्यवहारकाल कहते हैं।

प्र. १४८. पर्याय किसको कहते हैं?

उ. १४८. गुण के कार्य को पर्याय कहते हैं।

प्र. १४९. पर्याय के कितने भेद हैं?

उ. १४९. दो हैं—व्यंजन पर्याय और अर्थपर्याय।

प्र. १५०. व्यंजनपर्याय किसको कहते हैं?

उ. १५०. प्रदेशत्व गुण के विकार को व्यंजनपर्याय कहते हैं।

प्र. १५१. व्यंजनपर्याय के कितने भेद हैं?

उ. १५१. दो हैं—स्वभावव्यंजनपर्याय और विभावव्यंजनपर्याय।

प्र. १५२. स्वभावव्यंजनपर्याय किसको कहते हैं?

उ. १५२. बिना दूसरे निमित्त के जो व्यंजनपर्याय हो। जैसे-जीव की सिद्धपर्याय।

प्र. १५३. विभावव्यंजनपर्याय किसको कहते हैं?

उ. १५३. दूसरे निमित्त से जो व्यंजन पर्याय हो, उसको विभावव्यंजनपर्याय कहते हैं। जैसे—जीव की नर नारकादि पर्याय।

प्र. १५४. अर्थपर्याय किसको कहते हैं?

उ. १५४. प्रदेशत्व गुण के सिवाय अन्य समस्त गुणों के कार्य को अर्थपर्याय कहते हैं।

प्र. १५५. अथपर्याय के कितने भेद हैं?

उ. १५५. दो हैं—स्वभावअर्थपर्याय और विभावअर्थपर्याय।

प्र. १५६. स्वभावअर्थपर्याय किसको कहते हैं?

उ. १५६. बिना दूसरे निमित्त के जो अर्थपर्याय हो, उसको स्वभावअर्थपर्याय कहते हैं। जैसे—जीवका केवलज्ञान।

प्र. १५७. विभावअर्थपर्याय किसको कहते हैं?

उ. १५७. पर निमित्त से जो अर्थपर्याय हो, उसको विभावअर्थपर्याय कहते हैं। जैसे—जीव के रागद्वेष आदिक।

प्र. १५८. उत्पाद किसको कहते हैं?

उ. १५८. द्रव्य में नवीन पर्याय की प्राप्ति को उत्पाद कहते हैं।

प्र. १५९. व्यय किसको कहते हैं?

उ. १५९. द्रव्य की पूर्वपर्याय के त्याग को व्यय कहते हैं।

प्र. १६०. ध्रौव्य किसको कहते हैं?

उ. १६०. प्रत्यभिज्ञान को कारणभूत द्रव्य की किसी अवस्था की नित्यता को ध्रौव्य कहते हैं।

प्र. १६१. द्रव्यों में विशेष गुण कौन-कौन से हैं?

उ. १६१. जीवद्रव्य में चेतना, सम्यक्त्व, चारित्र इत्यादि। पुद्गल द्रव्य में स्पर्श, रस, गन्ध वर्ण। धर्मद्रव्य में गतिहेतूत्व वगैरह। अधर्मद्रव्य में स्थितिहेतुत्व वगैरह। आकाशद्रव्य में अवगाहन हेतूत्व। और कालद्रव्य में परिणमनहेतुत्व वगैरह।

प्र. १६२. आकाश के कितने भेद हैं?

उ. १६२. आकाश एक ही अखंड द्रव्य है।

प्र. १६३. आकाश कहाँ पर है?

उ. १६३. आकाश सर्वव्यापी है।

प्र. १६४. लोकाकाश किसको कहते हैं?

उ. १६४. जहाँ तक जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल ये पाँच द्रव्य हैं उसको लोकाकाश कहते हैं।

प्र. १६५. अलोकाकाश किसको कहते हैं?

उ. १६५. लोक से बाहर के आकाश को अलोकाकाश कहते हैं।

प्र. १६६. लोक की मोटाई, ऊँचाई, चौड़ाई कितनी है?

उ. १६६. लोक की मोटाई उत्तर और दक्षिण दिशा में सब जगह सात राजू हैं, चौड़ाई पूर्व और पश्चिम दिशा में मूल में (नीचे जड़ में) सात राजू है। ऊपर क्रम से घटकर सात राजू की ऊँचाई पर चौड़ाई एक राजू है। फिर क्रम से बढ़कर साढ़े दश राजू की ऊँचाई पर चौड़ाई पाँच राजू है। फिर क्रम से घटकर चौदहराजू की ऊँचाई पर एक राजू चौड़ाई है। और ऊर्द्ध और अघोदिशा में ऊँचाई चौदह राजू हैं।

प्र. १६७. धर्म तथा अधर्मद्रव्य खण्डरूप हैं कि अखंडरूप हैं और इनकी स्थिति कहाँ है?

उ. १६७. धर्म और अधर्म दोनों एक एक अखंड द्रव्य है और दोनों ही समस्त लोकाकाश में व्याप्त है।

प्र. १६८. प्रदेश किसको कहते हैं?

उ. १६८. आकाश के जितने हिस्से को एक पुद्गल परमाणु रोके, उसको प्रदेश

कहते हैं।

प्र. १६९. कालद्रव्य कितने भेदरूप हैं और उनकी स्थिति कहाँ है?

उ. १६९. लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उतने ही कालद्रव्य हैं और लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक काल द्रव्य (कालाणु) स्थित है।

प्र. १७०. पुद्गल द्रव्य कितने और उनकी स्थिति कहाँ है?

उ. १७०. पुद्गल द्रव्य अनन्तानन्त हैं और वे समस्त लोकाकाश में भरे हुए हैं।

प्र. १७१. जीवद्रव्य कितने और कहाँ हैं?

उ. १७१. जीवद्रव्य अनन्तानन्त हैं और वे समस्त लोकाकाश में भरे हुए हैं।

प्र. १७२. एक जीव कितना बड़ा है?

उ. १७२. एक जीव प्रदेशों की अपेक्षा लोकाकाश के बराबर हैं परन्तु संकोच विस्तार के कारण अपने शरीर के प्रमाण है। और मुक्तजीव अन्त के शरीर प्रमाण है।

प्र. १७३. लोकाकाश के बराबर कौन-सा जीव है?

उ. १७३. मोक्ष जाने से पहिले समुद्घात करने वाला जीव लोकाकाश के बराबर होता है।

प्र. १७४. समुद्घात किसको कहते हैं?

उ. १७४. मूल शरीर को बिना छोड़े जीव के प्रदेशों के बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं।

प्र. १७५. अस्तिकाय किसको कहते हैं?

उ. १७५. बहुप्रदेशी द्रव्य को अस्तिकाय कहते हैं।

प्र. १७६. अस्तिकाय कितने हैं?

उ. १७६. पाँच हैं—जीव, पुद्ल, धर्म अधर्म और आकाश। इन पाँचों द्रव्यों को अस्तिकाय कहते हैं। कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं हैं, इसलिए वह अस्तिकाय भी नहीं हैं।

प्र. १७७. यदि पुद्गल परमाणु एकप्रदेशी हैं, तो वह अस्तिकाय कैसे हुआ?

उ. १७७. पुद्गल परमाणु शक्ति की अपेक्षा से अस्तिकाय है। अर्थात् स्कंधरूप में होकर बहुप्रदेशी हो जाता है, इसलिए उपचार से अस्तिकाय है।

प्र. १७८. अनुजीवी गुण किसको कहते हैं?

उ. १७८. भावस्वरूप गुणों को अनुजीवी गुण कहते हैं। जैसे—सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, चेतना, स्पर्श, रस, गंध वर्णादिक।

प्र. १७९. प्रतिजीवी गुण किसको कहते हैं?

उ. १७९. वस्तु के अभावस्वरूप धर्म को प्रतिजीवी गुण कहते हैं। जैसे–नास्तित्व, अमूर्त्तत्व, अचेतनत्व वगैरह।

प्र. १८०. अभाव किसको कहते हैं?

उ. १८०. एक पदार्थ की दूसरे पदार्थ में गैर मौजूदगी को अभाव कहते हैं।

प्र. १८१. अभाव के कितने भेद हैं?

उ. १८१. चार हैं–प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव।

प्र. १८२. प्रागभाव किसको कहते हैं?

उ. १८२. वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में जो अभाव, उसको प्रागभाव कहते हैं।

प्र. १८३. प्रध्वंसाभाव किसको कहते हैं?

उ. १८३. आगामी पर्याय में वर्तमान पर्याय के अभाव को प्रध्वंसाभाव कहते हैं।

प्र. १८४. अन्योन्याभाव किसको कहते हैं?

उ. १८४. पुद्गल द्रव्य की एक वर्तमान पर्याय में दूसरे पुद्गल की वर्तमान पर्याय के अभाव को अन्योन्याभाव कहते हैं।

प्र. १८५. अत्यन्ताभाव किसको कहते हैं?

उ. १८५. एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य के अभाव को अत्यन्ताभाव कहते हैं।

अनुजीवीगुण।

प्र. १८६. जीव के अनुजीवी गुण कौन-से हैं?

उ. १८६. चेतना, सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, वीर्य, भव्यत्व, अभव्यत्व, जीवत्व, वैभाविक,कर्तृत्व, भोक्तृत्व, वगैरह अनन्तगुण हैं।

प्र. १८७. जीव के प्रतिजीवी गुण कौन से हैं?

उ. १८७. अव्याबाध, अवगाह, अगुरूलघु, सूक्ष्मत्व, नास्तित्व इत्यादि।

प्र. १८८. चेतना किसको कहते हैं?

उ. १८८. जिसमें पदार्थों का प्रतिभास (जानना) हो, उसको चेतना कहते हैं।

प्र. १८९. चेतना के कितने भेद हैं?

उ. १८९. दो हैं-दर्शनचेतना और ज्ञानचेतना।

प्र. १९०. दर्शनचेतना किसको कहते हैं?

उ. १९०. जिसमें महासत्ता का (सामान्य का) प्रतिभास (ज्ञान) हो, उसको दर्शनचेतना कहते हैं। जैसे-कुछ है।

प्र. १९१. महासत्ता किसको कहते हैं?

उ. १९१. समस्त पदार्थों के अस्तित्वगुण के ग्रहण करनेवाली सत्ता को महासत्ता

कहते हैं।

प्र. १९२. ज्ञानचेतना किसको कहते हैं?

उ. १९२. अवान्तरसत्ताविशिष्ट विशेष पदार्थ को विषय करने वाली चेतना को ज्ञानचेतना कहते हैं।

प्र. १९३. अवान्तरसत्ता किसको कहते हैं?

उ. १९३. किसी विवक्षित पदार्थ की सत्ता को अवान्तर सत्ता कहते हैं।

प्र. १९४. दर्शन चेतना के कितने भेद हैं?

उ. १९४. चार हैं- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

प्र. १९५. ज्ञान चेतना के कितने भेद हैं?

उ. १९५. पाँच हैं– मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवल ज्ञान।

प्र. १९६. मतिज्ञान किसको कहते हैं?

उ. १९६. इन्द्रिय और मन की सहायता से ज्ञान हो, उसको मतिज्ञान कहते हैं।

प्र. १९७. मतिज्ञान के कितने भेद हैं?

उ. १९७. दो हैं– सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और परोक्ष।

प्र. १९८. परोक्षमतिज्ञान के कितने भेद हैं?

उ. १९८. चार हैं– स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान।

प्र. १९९. मतिज्ञान के दूसरी तरह से कितने भेद हैं?

उ. १९९. चार हैं-अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

प्र. २००. अवग्रह किसको कहते हैं?

उ. २००. इन्द्रिय और पदार्थ के योग्य स्थान में (मौजूद जगह में) रहने पर सामान्य प्रतिभास रूप दर्शन के पीछे अवान्तरसत्तासहित विशेष वस्तु के प्राथमिक ज्ञान को अवग्रह कहते हैं। जैसे यह मनुष्य है।

प्र. २०१. ईहाज्ञान किसको कहते हैं?

उ. २०१. अवग्रह से जाने हुए पदार्थ के विशेष में उत्पन्न हुए संशय को दूर करते हुए अभिलाषस्वरूप ज्ञान को ईहा कहते हैं। जैसे-ये ठाकुरदासजी हैं। यह ज्ञान इतना कमजोर है कि किसी पदार्थ की ईहा होकर छूट जाय, तो उसके विषय में कालान्तर में संशय और विस्मरण हो जाता है।

प्र. २०२. अवाय किसको कहते हैं?

उ. २०२. ईहा से जाने हुए पदार्थ में यह वही है अन्य नहीं हैं ऐसे मजबूत ज्ञान को अवाय कहते हैं। जैसे-ये ठाकुरदासजी ही हैं और नहीं हैं। अवाय से जाने हुए पदार्थ में संशय तो नहीं होता किंतु विस्मरण हो जाता है।

प्र. २०३. धारणा किसको कहते हैं।

उ. २०३. जिस ज्ञान से जाने हुए पदार्थ में कालान्तर में संशय तथा विस्मरण नहीं होय उसे धारणा कहते हैं।

प्र. २०४. मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थों के कितने भेद हैं?

उ. २०४. दो हैं– व्यक्त और अव्यक्त।

प्र. २०५. अवग्रहादिक ज्ञान दोनों ही प्रकार के पदार्थों में होते हैं या कैसे?

उ. २०५. व्यक्त पदार्थ के अवग्रहादिक चारों ही होते हैं, परन्तु अव्यक्त पदार्थ का सिर्फ अवग्रह ही होता है।

प्र. २०६. अर्थावग्रह किसको कहते हैं?

उ. २०६. व्यक्त पदार्थ के अवग्रह को अर्थावग्रह कहते हैं।

प्र. २०७. व्यंजनावग्रह किसको कहते हैं?

उ. २०७. अव्यक्त पदार्थ के अवग्रह को व्यंजनावग्रह कहते हैं।

प्र. २०८. व्यंजनावग्रह अर्थावग्रह की तरह सब इन्द्रियों और मन द्वारा होता है या कैसे?

उ. २०८. व्यंजनावग्रह चक्षु और मन के सिवाय बाकी की सब इन्द्रियों से होता है।

प्र. २०९. व्यक्त और अव्यक्त पदार्थों के कितने भेद हैं?

उ. २०९. हर एक के बारह २ भेद हैं– बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, निःसृत, अनिःसृत, उक्त, अनुक्त, ध्रुव, अध्रुव।

प्र. २१०. श्रुतज्ञान किसको कहते हैं?

उ. २१०. मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ से संबन्ध लिये हुए किसी दूसरे पदार्थ के विशेष ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे–'घट' शब्द सुनने के अनंतर उत्पन्न हुआ कंबुग्रीवादिरूप घटका ज्ञान।

प्र. २११. दर्शन कब होता है?

उ. २११. ज्ञान के पहिले दर्शन होता है। बिना दर्शन के अल्पज्ञ जनों के ज्ञान नहीं होता परंतु सर्वज्ञ देव के ज्ञान और दर्शन साथ २ होते हैं।

प्र. २१२. चक्षुदर्शन किसको कहते हैं?

उ. २१२. नेत्रजन्य मतिज्ञान से पहिले सामान्य प्रतिभास या अवलोकन को चक्षुदर्शन कहते हैं।

प्र. २१३. अचक्षुदर्शन किसको कहते हैं?

उ. २१३. चक्षुके (नेत्र के) सिवाय अन्य इन्द्रियों और मन सम्बन्धी मतिज्ञान के पहिले होने वाले सामान्य अवलोकन को अचक्षुदर्शन कहते हैं।

प्र. २१४. अवधिदर्शन किसको कहते हैं?

उ. २१४. अवधिदर्शन से पहिले होने वाले सामान्य अवलोकन को अवधिदर्शन कहते हैं।

प्र. २१५. केवलदर्शन किसको कहते हैं?

उ. २१५. केवलज्ञान के साथ होने वाले सामान्य अवलोकन को केवलदर्शन कहते हैं।

प्र. २१६. सम्यक्तव गुण किसको कहते हैं?

उ. २१६. जिस गुण के प्रगट होने पर अपने शुद्ध आत्मा का प्रतिभास हो, उसको सम्यक्त्व गुण कहते हैं।

प्र. २१७. चारित्र किसको कहते हैं?

उ. २१७. बाह्य और आभ्यन्तर क्रिया के निरोध से प्रादुर्भूत आत्मा की शुद्धि विशेष को चारित्र कहते हैं।

प्र. २१८. बाह्यक्रिया किसको कहते हैं?

उ. २१८. हिंसा करना, चोरी करना, झूठ बोलना, मैथुन करना और परिग्रहसंचय करना।

प्र. २१९. आभ्यन्तरक्रिया किसको कहते हैं?

उ. २१९. योग और कषाय को आभ्यन्तरक्रिया कहते हैं।

प्र. २२०. योग किसको कहते हैं?

उ. २२०. मन वचन काय के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों के चंचल होने को योग कहते हैं।

प्र. २२१. कषाय किसको कहते हैं?

उ. २२१. क्रोधमानमायालोभरूप आत्मा के विभाव परिणामों को कषाय कहते हैं।

प्र. २२२. चारित्र के कितने भेद हैं?

उ. २२२. चार हैं स्वरूपाचरण चारित्र, देशचारित्र, सकलचारित्र और यथाख्यातचारित्र।

प्र. २२३. स्वरूपाचरण चारित्र किसको कहते हैं?

उ. २२३. शुद्धात्मानुभवन से अविनाभावी चारित्र विशेष को स्वरूपाचरणचारित्र कहते हैं।

प्र. २२४. देशचारित्र किसको कहते हैं?

उ. २२४. श्रावक के व्रतों को देशचारित्र कहते हैं।

प्र. २२५. सकलचारित्र किसको कहते हैं?

उ. २२५. मुनियों के व्रतों को सकलचारित्र कहते हैं।

प्र. २२६. यथाख्यातचारित्र किसको कहते हैं?

उ. २२६. कषायों के सर्वथा अभाव से प्रादुर्भूत आत्मा की शुद्धिविशेष को यथाख्यातचारित्र कहते हैं।

प्र. २२७. सुख किसको कहते हैं?

उ. २२७. आह्लादस्वरूप आत्मा के परिणामविशेष को सुख कहते हैं।

प्र. २२८. वीर्य किसको कहते हैं?

उ. २२८. आत्मा की शक्ति को (बल को) वीर्य कहते हैं।

प्र. २२९. भव्यत्व गुण किसको कहते हैं?

उ. २२९. जिस शक्ति के निमित्त से आत्मा के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र प्रगट होने की योग्यता हो, उसको भव्यत्व गुण कहते हैं।

प्र. २३०. अभव्यत्व गुण किसको कहते हैं?

उ. २३०. जिस शक्ति के निमित्त से आत्मा के सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र प्रगट होने की योग्यता न हो, उसको अभव्यत्व गुण कहते हैं।

प्र. २३१. जीवत्व गुण किसको कहते हैं?

उ. २३१. जिस शक्ति के निमित्त से आत्मा प्राण धारण करे, उसको जीवत्व गुण कहते हैं।

प्र. २३२. प्राण किसको कहते हैं?

उ. २३२. जिनके संयोग से यह जीव जीवन अवस्था को प्राप्त हो और वियोग से मरण अवस्था को प्राप्त हो, उनको प्राण कहते हैं।

प्र. २३३. प्राण के कितने भेद हैं?

उ. २३३. दो हैं– द्रव्यप्राण और भावप्राण।

प्र. २३४. द्रव्यप्राणों के कितने भेद हैं?

उ. २३४. दस हैं– मन, वचन, काय, स्पर्शनइन्द्रिय, रसनाइन्द्रिय, घ्राणइन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, श्रोत्रइन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, आयु।

प्र. २३५. भावप्राण किसको कहते हैं?

उ. २३५. आत्मा की जिस शक्ति के निमित्त से इन्द्रियादिक अपने कार्य में प्रवर्तें उसे भावप्राण कहते हैं। (आत्मा के चेतना और बल गुण को भावप्राण कहते हैं)।

प्र. २३६. किस जीव के कितने प्राण होते हैं?

उ. २३६. एकेंद्रिय जीव के चार प्राण–स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छवास और आयु। द्वीन्द्रिय के छह प्राण–स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छवास आयु,

रसनेन्द्रिय, और वचन। त्रीन्द्रिय के सात–प्राण–पूर्वोक्त छह और घ्राणेन्द्रिय। चतुरिन्द्रिय के आठ प्राण–पूर्वोक्त सात और एक चक्षुइन्द्रिय। पंचेन्द्रिय असैनी के नौ प्राण–पूर्वोक्त आठ और एक श्रोत्रइन्द्रिय। सैनी पंचेन्द्रिय के दश प्राण–पूर्वोक्त ९ और एक मन।

प्र. २३७. भावप्राण के कितने भेद हैं?

उ. २३७. दो हैं– भावेन्द्रिय और बलप्राण।

प्र. २३८. भावेंद्रिय के कितने भेद हैं?

उ. २३८. पांच हैं– स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र।

प्र. २३९. बलप्राण के कितने भेद हैं?

उ. २३९. तीन हैं– मनोबल, वचनबल, कायबल।

प्र. २४०. वैभाविकगुण किसको कहते हैं?

उ. २४०. वैभाविकगुण उस शक्ति को कहते हैं, जिसके निमित्त से दूसरे द्रव्य के सम्बन्ध होने पर आत्मा में विभावपरिणति हो।

प्रतिजीवी गुण।

प्र. २४१. अव्याबाध प्रतिजीवी गुण किसको कहते हैं?

उ. २४१. साता और असातारूप आकुलता के अभाव को अव्याबाधप्रतिजीवीगुण कहते हैं।

प्र. २४२. अवगाह प्रतिजीवीगुण किसको कहते हैं?

उ. २४२. परतन्त्रता के अभाव को अवगाह प्रतिजीवीगुण कहते हैं।

प्र. २४३. अगुरूलघुत्व प्रतिजीवीगुण किसको कहते हैं?

उ. २४३. उच्चता और नीचता के अभाव को अगुरूलघुत्व प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

प्र. २४४. सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण किसको कहते हैं?

उ. २४४. इन्द्रियों के विषयरूप स्थूलता के अभाव को सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

इति द्वितीयोः अध्यायः समाप्तः ॥ 2 ॥

❀ ❀ ❀

अथ तृतीयोऽध्यायः प्रारम्भ्यते।

प्र. २४५. जीव के कितने भेद हैं?

उ. २४५. दो है–संसारी और मुक्त।

प्र. २४६. संसारी जीव किसको कहते हैं?

उ. २४६. कर्म–सहित जीव को संसारी जीव कहते हैं।

प्र. २४७. मुक्त जीव किसको कहते हैं?

उ. २४७. कर्म रहित जीव को मुक्त जीव कहते हैं।

प्र. २४८. कर्म किसको कहते हैं?

उ. २४८. जीव के रागद्वेषादिक परिणामों के निमित्त से कार्माण वर्गणारूप जो पुद्‌गल स्कंध जीव के साथ बन्ध को प्राप्त होते हैं उनको कर्म कहते हैं।

प्र. २४९. बन्ध के कितने भेद हैं?

उ. २४९. चार हैं–प्रकृतिबंध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबंध और अनुभागबन्ध।

प्र. २५०. इन चारों प्रकारों के बंधो का कारण क्या है?

उ. २५०. प्रकृति और प्रदेशबन्ध योग से होते हैं। स्थिति और अनुभागबन्ध कषाय से होते हैं।

प्र. २५१. प्रकृतिबन्ध किसको कहते हैं?

उ. २५१. कर्म में आत्मा को घातने की शक्ति के पड़ने को प्रकृति बन्ध कहते हैं।

प्र. २५२. प्रकृतिबन्ध के कितने भेद हैं?

उ. २५२. आठ हैं–1. ज्ञानावरण 2.दर्शनावरण 3.वेदनीय 4.मोहनीय 5.आयु 6.नाम. 7.गोत्र 8.अन्तराय।

प्र. २५३. ज्ञानावरण किसको कहते हैं?

उ. २५३. जो कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को घातै उसको ज्ञानावरण कहते हैं।

प्र. २५४. ज्ञानावरण कर्म के कितने भेद हैं?

उ. २५४. पाँच हैं– मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यय ज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण।

प्र. २५५. दर्शनावरण कर्म किसको कहते हैं?

उ. २५५. जो आत्मा के दर्शन गुण को घातै उसको दर्शनावरण कर्म कहते हैं।

प्र. २५६. दर्शनावरण कर्म के कितने भेद हैं?

उ. २५६. नौ हैं– चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि।

प्र. २५७. वेदनीय कर्म किसको कहते हैं?

उ. २५७. जिस कर्म के फल से जीव को आकुलता होवै अर्थात् जो अब्याबाध गुण को घातै उसको वेदनीय कर्म कहते हैं।

प्र. २५८. वेदनीय कर्म के कितने भेद हैं?

उ. २५८. दो हैं– सातावेदनीय और असातावेदनीय

प्र. २५९. मोहनीय कर्म किसको कहते हैं?

उ. २५९. जो आत्मा के सम्यक्त्व और चारित्र गुण को घातै उसको मोहनीय कर्म कहते हैं।

प्र. २६०. मोहनीय कर्म के कितने भेद हैं?

उ. २६०. दो हैं– दर्शनमोहनीय और चारित्र मोहनीय।

प्र. २६१. दर्शनमोहनीय किसको कहते हैं?

उ. २६१. आत्मा के सम्यक्त्व गुण को जो घातै उसे दर्शनमोहनीय कर्म कहते हैं।

प्र. २६२. दर्शनमोहनीय कर्म के कितने भेद हैं?

उ. २६२. तीन हैं–मिथ्यात्व, सम्यकमिथ्यात्व और सम्यक प्रकृति।

प्र. २६३. मिथ्यात्व किसको कहते हैं?

उ. २६३. जिस कर्म के उदय से जीव के अतत्त्वश्रद्धान हो, उसको मिथ्यात्व कहते हैं।

प्र. २६४. सम्यक्मिथ्यात्व किसको कहते हैं?

उ. २६४. जिस कर्म के उदय से मिले हुए परिणाम हों, जिनको न तो सम्यक्त्वरूप कह सकते हैं और न मिथ्यात्वरूप: उसको सम्यक्मिथ्यात्व कहते हैं।

प्र. २६५. सम्यक्प्रकृति किसको कहते हैं?

उ. २६५. जिस कर्म के उदय से सम्यक्त्व गुण का मूलघात तो न हो परन्तु चल, मलादिक दोष उपजें, उसको सम्यक्प्रकृति कहते हैं।

प्र. २६६. चारित्रमोहनीय किसको कहते हैं?

उ. २६६. जो आत्मा के चरित्र गुण को घाते, उसको चारित्र मोहनीय कहते हैं।

प्र. २६७. चारित्रमोहनीय के कितने भेद हैं?

उ. २६७. दो हैं–कषाय और नोकषाय (किंचित्कषाय)

प्र. २६८. कषाय के कितने भेद हैं?

उ. २६८. सोलह–अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनंतानुबंधी मान, अनंतानुबंधी माया अनंतानुबंधी लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण मान, अप्रत्याख्यानावरण माया, अप्रत्याख्यानावरण लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण मान, प्रत्याख्यानावरण माया, प्रत्याख्यानावरण लोभ, संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, संज्वलन, माया और संज्वलन लोभ।

प्र. २६९. नोकषाय के कितने भेद हैं?

उ. २६९. नव–हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद।

प्र. २७०. अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ किनको कहते हैं?

उ. २७०. जो आत्मा के स्वरूपाचरण चारित्र को घाते, उनको अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ कहते हैं।

प्र. २७१. अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ किनको कहते हैं?

उ. २७१. जो आत्मा के देशचारित्र को घातैं, उनको प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया लोभ कहते हैं।

प्र. २७२. प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ किनको कहते हैं?

उ. २७२. जो आत्मा के सकलचारित्र को घातैं, उनको प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ कहते हैं?

प्र. २७३. संज्वलन क्रोध मान माया लोभ और नोकषाय किनको कहते हैं?

उ. २७३. जो आत्मा के यथाख्यात चारित्र को घातैं, उनको संज्वलन और नोकषाय कहते हैं।

प्र. २७४. आयुकर्म किसको कहते हैं?

उ. २७४. जो कर्म आत्मा को नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव के शरीर में रोके रक्खे, उसको आयुकर्म कहते हैं। अर्थात्–आयुकर्म आत्मा के अवगाह गुण को घातता है।

प्र. २७५. आयुकर्म के कितने भेद हैं?

उ. २७५. चार–नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु।

प्र. २७६. नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. २७६. जो जीव को गत्यादिक नानारूप परिणमावे, अथवा शरीरादिक बनावे। भावार्थ–नामकर्म आत्मा के सूक्ष्मत्वगुण को घातता है।

प्र. २७७. नामकर्म के कितने भेद हैं?

उ. २७७. तिरानवे–चारगति (नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव) पांच जाति (एकेन्द्रिय,

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचन्द्रिय) पांच शरीर (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक,तैजस, कार्माण) तीन अंगोपांग (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक)एक निर्माण कर्म, पांच बन्धन कर्म (औदारिकबंधन, वैक्रियिकबंधन, आहारकबन्धन, तैजसबन्धन, कार्माणबन्धन) पांच संघात (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण) छह संस्थान–(समचतुरस्त्र संस्थान, न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान, स्वाति संस्थान, कुब्जक संस्थान, वामन संस्थान) (हुंडक संस्थान) छह संहनन (वज्रवृषभनाराच संहनन, वज्रनाराच संहनन, नाराच संहनन, अर्द्धनाराच संहनन, कीलक संहनन, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन) पांच वर्ण कर्म (कृष्ण, नील, रक्त, पीत, श्वेत) दो गंध कर्म (सुगंध, दुर्गंध) पांच रस कर्म (खट्टा, मीठा, कडुआ, कषायला, चर्परा) आठ स्पर्श (कठोर, कोमल, हल्का, भारी, ठंडा, गरम, चिकना, रूखा) चार आनुपूर्व्य (नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव) एक अगुरुलघु कर्म, एक उपघात कर्म, एक परघात कर्म, एक आताप कर्म, एक उद्योत कर्म, दो विहायोगति (एक मनोज्ञ, दूसरा अमनोज्ञ), एक उच्छ्वास, एक त्रस, एक स्थावर, एक बादर, एक सूक्ष्म, एक पर्याप्त कर्म, एक अपर्याप्त कर्म, एक प्रत्येक नामकर्म, एक साधारण नामकर्म एक स्थिर नामकर्म, एक अस्थिर नामकर्म, एक शुभ नामकर्म, एक अशुभ नामकर्म, एक सुभग नामकर्म, एक दुर्भग नामकर्म, एक सुस्वर नामकर्म, एक दु:स्वर नामकर्म, एक आदेय नामकर्म, एक अनादेय नामकर्म, एक यश: कीर्ति नामकर्म, एक अयश: कीर्ति नामकर्म, एक तीर्थकर नामकर्म।

प्र. २७८. गति नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. २७८. जो कर्म जीव का आकार नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव के समान बनावे।

प्र. २७९. जाति किसको कहते हैं?

उ. २७९. अव्यभिचारी सदृशता से एकरूप करने वाले विशेष को जाति कहते हैं अर्थात् वह सदृशधर्म वाले पदार्थों को ही ग्रहण करता है।

प्र. २८०. जाति नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. २८०. जिस कर्म के उदय से एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय कहा जाए।

प्र. २८१. शरीर नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. २८१. जिस कर्म के उदय से आत्मा के औदारिकादि शरीर बनें।

प्र. २८२. निर्माण कर्म किसको कहते हैं?

उ. २८२. जिसके उदय से अङ्गोपाङ्ग की ठीक २ रचना हो, उसको निर्माण कर्म कहते हैं।

प्र. २८३. बंधन नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. २८३. जिस कर्म के उदय से औदारिकादिक शरीरों के परमाणु परस्पर सम्बन्ध को प्राप्त हो उसको बन्धन नामकर्म कहते हैं।

प्र. २८४. संघात नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. २८४. जिस कर्म के उदय से औदारिकादिक शरीरों के परमाणु छिद्ररहित एकता को प्राप्त हों।

प्र. २८५. संस्थान नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. २८५. जिस कर्म के उदय से शरीर की आकृति (शक्ल) बने, उसको संस्थान नामकर्म कहते हैं।

प्र. २८६. समचतुरस्त्र संस्थान किसको कहते हैं?

उ. २८६. जिस कर्म के उदय से शरीर की शक्ल ऊपर नीचे तथा बीच में समभाग से शरीर के अवयव बने।

प्र. २८७. न्यग्रोध परिमंडल किसको कहते हैं?

उ. २८७. जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर बड़ के वृक्ष की तरह हो, अर्थात् जिसके नाभि से नीचे के अंग छोटे और ऊपर के बड़े हों।

प्र. २८८. स्वाति संस्थान किसको कहते हैं?

उ. २८८. ऊपर वाले जवाब से बिल्कुल विपरीत हो। जैसे साँप की बाँमी।

प्र. २८९. कुब्जक संस्थान किसको कहते हैं?

उ. २८९. जिस कर्म के उदय से कुबड़ा शरीर हो।

प्र. २९०. वामन संस्थान किसको कहते हैं?

उ. २९०. जिस कर्म के उदय से बौना शरीर हो।

प्र. २९१. हुंडक संस्थान किसको कहते हैं?

उ. २९१. जिस कर्म के उदय से शरीर के अंगोपांग किसी खास शक्ल के न हों।

प्र. २९२. संहनन नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. २९२. जिस कर्म के उदय से हाड़ों का बन्धनविशेष हो, उसे संहनन नामकर्म कहते हैं।

प्र. २९३. वज्रवृषभनाराच संहनन किसको कहते हैं?

उ. २९३. जिस कर्म के उदय से वज्र के हाड़, वज्र के बेठन और वज्र की ही कीलियाँ हों।

प्र. २९४. वज्रनाराच संहनन किसको कहते हैं?

उ. २९४. जिस कर्म के उदय से वज्र के हाड़ और वज्र की कीली हों। परन्तु बेठन वज्र के न हों।

प्र. २९५. नाराच संहनन किसको कहते हैं?

उ. २९५. जिस कर्म के उदय से बेठन और कीली सहित हाड़ हों।

प्र. २९६. अर्द्धनाराच संहनन किसको कहते हैं?

उ. २९६. जिसके उदय से हाड़ों की संधि अर्द्धकीलित हो।

प्र. २९७. कीलक संहनन किसको कहते हैं?

उ. २९७. जिस कर्म के उदय से हाड़ परस्पर कीलित हों।

प्र. २९८. असंप्राप्तासृपाटिका संहनन किसको कहते हैं?

उ. २९८. जिस कर्म के उदय से जुदे २ हाड़ नसों से बंधे हों–परस्पर कीले हुए न हों।

प्र. २९९. वर्ण नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. २९९. जिस कर्म के उदय से शरीर में रंग हो।

प्र. ३००. गंध नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३००. जिस कर्म के उदय से शरीर में गंध हो।

प्र. ३०१. रस नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३०१. जिस कर्म के उदय से शरीर में रस हो।

प्र. ३०२. स्पर्श नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३०२. जिस कर्म के उदय से शरीर में स्पर्श हो।

प्र. ३०३. आनुपूर्वी नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. ३०३. जिस कर्म के उदय से आत्मा के प्रदेश मरण के पीछे और जन्म से पहिले रास्ते में अर्थात् विग्रहगति में मरण से पहिले के शरीर के आकार रहें।

प्र. ३०४. अगुरुलघु नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. ३०४. जिस कर्म के उदय से शरीर, लोहे के गोले की तरह भारी और आक के तूल की तरह हलका न हो।

प्र. ३०५. उपघात नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. ३०५. जिस कर्म के उदय से अपने अंगों से अपना घात हो।

प्र. ३०६. परघात नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३०६. जिस कर्म के उदय से दूसरे का घात करने वाले अंगोपांग हों।

प्र. ३०७. आताप नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. ३०७. जिस कर्म के उदय से आताप रूप शरीर हो। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब।

प्र. ३०८. उद्योत नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. ३०८. जिस कर्म के उदय से उद्योत रूप शरीर हो।

प्र. ३०९. विहायोगति नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३०९. जिस कर्म के उदय से आकाश में गमन हो। उसके शुभ और अशुभ ऐसे दो भेद हैं।

प्र. ३१०. उच्छ्वास नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३१०. जिस कर्म के उदय से श्वासोच्छ्वास हों।

प्र. ३११. त्रस नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३११. जिस कर्म के उदय से द्वीन्द्रियादि जीवों में जन्म हो।

प्र. ३१२. स्थावर नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३१२. जिस कर्म के उदय से पृथ्वी, अप, तेज, वायु और वनस्पति में जन्म हो।

प्र. ३१३. पर्याप्तिकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३१३. जिसके उदय से अपने २ योग्य पर्याप्ति पूर्ण हो।

प्र. ३१४. पर्याप्ति किसको कहते हैं?

उ. ३१४. आहारवर्गणा, भाषावर्गणा, और मनोवर्गणा के परमाणुओं को शरीर इन्द्रियादिरूप परिणमावने की शक्ति की पूर्णता को पर्याप्ति कहते हैं।

प्र. ३१५. पर्याप्ति के कितने भेद हैं?

उ. ३१५. छह–प्रथम आहारपर्याप्ति (आहारवर्गणा के परमाणुओं को खल और रसभागरूप परिणमावने को कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को आहारपर्याप्ति कहते हैं), दूसरी शरीर पर्याप्ति (जिन परमाणुओं को खलरूप परिणमाया था उसके हाड़ वगैरह कठिन अवयवरूप और जिनको रसरूप परिणमाया था उनको रुधिरादिक द्रवरूप परिणमावने को कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को शरीर पर्याप्ति कहते हैं), तीसरी इद्रियपर्याप्ति (आहारवर्गणा के परमाणुओं को इन्द्रिय के आकार परिणमावने को तथा इन्द्रियद्वारा विषय ग्रहण करने को कारण भूत जीव की शक्ति की पूर्णता को इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं), चौथी श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति (आहारवर्गणा के परमाणुओं को श्वासोच्छ्वासरूप परिणमावने को कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति कहते हैं), पांचवी भाषापर्याप्ति

(भाषावर्गणा के परमाणुओं को वचनरूप परिणमावने को कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को भाषापर्याप्ति कहते हैं), छट्ठी मन:पर्याप्ति (मनोवर्गणा के परमाणुओं को हृदयस्थान में आठ पाँखुरी के कमलाकार मनरूप परिणमावने को तथा उसके द्वारा यथावत् विचार करने को कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को मन:पर्याप्ति कहते हैं)। एकेन्द्रिय के भाषा और मन के बिना चार पर्याप्ति होती है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असैनी पंचेन्द्रिय के मन के बिना पांच पर्याप्ति होती हैं। इन सब पर्याप्तियों के पूर्ण होने का काल अन्तर्मुहूर्त्त है। और एक एक पर्याप्ति का काल भी अन्तमुहूर्त्त है और सबका मिलकर भी अन्तर्मुहूर्त्त है। और पहले से दूसरे का तथा दूसरे से तीसरे का इसी तरह छट्ठे तक का काल क्रम से बड़ा २ अन्तर्मुहूर्त्त है। अपने अपने योग्य पर्याप्तियों का प्रारम्भ तो एकदम से होता है किन्तु पूर्णता क्रम से होती है। जब तक किसी जीव की शरीर पर्याप्ति पूर्ण तो न हो लेकिन नियम से पूर्ण होने वाली हो, तब तक उस जीव को **निर्वृत्त्यपर्याप्तक** कहते हैं। और जिसकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो गई हो, उसको **पर्याप्तक** कहते हैं। और जिसकी एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो तथा श्वास के अठारहवें भाग में ही मरण होने वाला हो, उसको **लब्ध्यपर्याप्तक** कहते हैं।

प्र. ३१६. अपर्याप्ति नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३१६. जिस कर्म के उदय से लब्ध्यपर्याप्तक अवस्था हो, उसको अपर्याप्तिक नामकर्म कहते हैं।

प्र. ३१७. प्रत्येक नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३१७. जिसके उदय से एक शरीर का एक स्वामी हो, उसको प्रत्येक नामकर्म कहते हैं।

प्र. ३१८. साधारण नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. ३१८. जिस कर्म के उदय से एक शरीर के अनेक जीव स्वामी (मालिक) हों, उसको साधारण नामकर्म कहते हैं।

प्र. ३१९. स्थिर नामकर्म और अस्थिर नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३१९. जिस कर्म के उदय से शरीर के धातु और उपधातु अपने २ ठिकाने रहें, उसको स्थिर नामकर्म कहते हैं और जिस कर्म के उदय से शरीर के धातु और उपधातु अपने २ ठिकाने न रहें, उसको अस्थिर नाम कर्म कहते हैं।

प्र. ३२०. शुभ नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३२०. जिस कर्म के उदय से शरीर के अवयव सुन्दर हों, उसको शुभ नामकर्म कहते हैं।

प्र. ३२१. अशुभ नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३२१. जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर न हों, उसको अशुभ नामकर्म कहते हैं।

प्र. ३२२. सुभग नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३२२. जिस कर्म के उदय से दूसरे जीव अपने से प्रीति करें, उसको सुभग नामकर्म कहते हैं।

प्र. ३२३. दुर्भग नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३२३. जिस कर्म के उदय से दूसरे जीव अपने से दुश्मनी या बैर करें, उसको दुर्भग नामकर्म कहते हैं।

प्र. ३२४. सुस्वर नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३२४. जिसके उदय से अच्छा स्वर हो, उसको सुस्वर नामकर्म कहते हैं।

प्र. ३२५. दुःस्वर नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३२५. जिस कर्म के उदय से अच्छा स्वर न हो, उसको दु:स्वर नामकर्म कहते हैं।

प्र. ३२६. आदेय नामकर्म किसे कहते हैं?

उ. ३२६. जिस कर्म के उदय से कान्तिसहित शरीर उपजै, उसको आदेय नामकर्म कहते हैं।

प्र. ३२७. अनादेय नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३२७. जिस कर्म के उदय से कान्तिसहित शरीर न हो।

प्र. ३२८. यश:कीर्त्ति नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३२८. जिस कर्म के उदय से संसार में जीव की तारीफ हो, उसको यश:कीर्ति नामकर्म कहते हैं।

प्र. ३२९. अयश:कीर्त्ति नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३२९. जिस कर्म के उदय से संसार में जीव की तारीफ न हो, उसे अयश:कीर्त्ति नामकर्म कहते हैं।

प्र. ३३०. तीर्थंकर नामकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३३०. अरहंत पद के कारणभूत कर्म को तीर्थंकर नामकर्म कहते हैं

प्र. ३३१. गोत्र कर्म किसको कहते हैं?

उ. ३३१. जिस कर्म के उदय से सन्तान के क्रम से चले आए जीव के आचरणरूप

उच्च नीचे गोत्र में जन्म हो।

प्र. ३३२. गोत्र कर्म के कितने भेद हैं?

उ. ३३२. दो -उच्चगोत्र और नीचगोत्र।

प्र. ३३३. उच्च गोत्रकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३३३. जिस कर्म के उदय से उच्च गोत्र में जन्म हो।

प्र. ३३४. नीच गोत्रकर्म किसको कहते हैं?

उ. ३३४. जिस कर्म के उदय से नीच गोत्र में जन्म हो।

प्र. ३३५. अन्तराय कर्म किसको कहते हैं?

उ. ३३५. जो दानादिक में विघ्न डाले।

प्र. ३३६. अन्तराय कर्म के कितने भेद हैं?

उ. ३३६. पांच-दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय। हर एक का अर्थ जो हर एक में विघ्न डाले।

प्र. ३३७. पुण्य कर्म किसको कहते हैं?

उ. ३३७. जो जीव को इष्ट वस्तु की प्राप्ति करावे।

प्र. ३३८. पाप कर्म किसको कहते हैं?

उ. ३३८. जो जीव को अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति करावे।

प्र. ३३९. घातिया कर्म किसको कहते हैं?

उ. ३३९. जो जीव के ज्ञानादिक अनुजीवी गुणों को घाते, उसे घातिया कर्म कहते हैं।

प्र. ३४०. अघातिया कर्म किसको कहते हैं?

उ. ३४०. जो जीव के ज्ञानादिक अनुजीवीगुणों को न घाते, उसे अघातिया कर्म कहते हैं।

प्र. ३४१. सर्वघाति कर्म किसको कहते हैं?

उ. ३४१. जो जीव के अनुजीवी को पूरे तौर से घाते।

प्र. ३४२. देशघाति कर्म किसको कहते हैं?

उ. ३४२. जो जीव के अनुजीवी गुणों को एकदेश घाते, उसको देशघाति कर्म कहते हैं।

प्र. ३४३. जीव विपाकी कर्म किसको कहते हैं?

उ. ३४३. जिसका फल जीव में हो।

प्र. ३४४. पुद्गल विपाकी कर्म किसको कहते हैं?

उ. ३४४. जिसका फल पुद्गल में (शरीर में) हो।

प्र. ३४५. भवविपाकी कर्म किसको कहते हैं?

उ. ३४५. जिसके फल से जीव संसार में रुके।

प्र. ३४६. क्षेत्रविपाकी कर्म किसको कहते हैं?

उ. ३४६. जिसके फल से विग्रहगति में जीव का आकार पहिला सा बना रहे।

प्र. ३४७. विग्रहगति किसको कहते हैं?

उ. ३४७. एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर ग्रहण करने के लिए जीव के जाने को विग्रह गति कहते हैं।

प्र. ३४८. घातिया कर्म कितने और कौन-कौन से हैं?

उ. ३४८. सैंतालीस–ज्ञानावरण **५**, दर्शनावरण **९**, मोहनीय **२८**, और अन्तराय **५** = **४७।**

प्र. ३४९. अघातिया कर्म कितने और कौन-कौन से हैं?

उ. ३४९. एक सौ एक–वेदनीय **२**, आयु **४**, नाम **९३**, और गोत्र **२** =**१०१**

प्र. ३५०. सर्वघातिया प्रकृति कितनी और कौन-कौन सी हैं?

उ. ३५०. इक्कीस हैं–ज्ञानावरण की **१** (केवलज्ञानावरण), दर्शनावरण की **६** (केवलदर्शनावरण एक और निद्रा पांच), मोहनीय की **१४** (अनन्तानुबंधी **४** अप्रत्याख्यानावरण **४**, प्रत्याख्यानावरण **४**, मिथ्यात्व **१** और सम्यग्मिथ्यात्व **१**= २१)।

प्र. ३५१. देशघाति प्रकृति कितनी और कौन-कौन सी हैं?

उ. ३५१. छब्बीस हैं–ज्ञानावरण की ४ (मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरण) दर्शनावरण की **३** (चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरण), मोहनीय की १४, (संज्वलन ४, नो कषाय ९, सम्यक्त्व १), अन्तरायकी **५** = २६।

प्र. ३५२. क्षेत्रविपाकी प्रकृति कितनी और कौन-कौन सी हैं?

उ. ३५२. चार हैं–नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी।

प्र. ३५३. भवविपाकी प्रकृति कितनी और कौन-कौन सी हैं?

उ. ३५३. चार हैं–नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु।

प्र. ३५४. जीवविपाकी प्रकृति कितनी और कौन-कौन सी हैं?

उ. ३५४. अठहत्तर हैं–घातिया की **४७**, गोत्र की **२**, वेदनीय की **२**, और नामकर्म की **२७** (तीर्थंकर प्रकृति, उच्छवास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्ति, अपर्याप्ति,

सुस्वर, दु:स्वर, आदेय, अनादेय, यश:कीर्त्ति, अयश:कीर्त्ति, त्रस, स्थावर, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, सुभग, दुर्भग, गति ४, जाति ५)। सब मिलकर ७८।

प्र. ३५५. पुद्‌गल विपाकी प्रकृति कितनी और कौन-कौन सी हैं?

उ. ३५५. बासठ हैं–(सर्व प्रकृति १४८ में से क्षेत्र विपाकी भवविपाकी ४, जीवविपाकी ७८, ऐसे सब मिलाकर ८६ प्रकृति घटाने से शेष नहीं **६२** प्रकृति पुद्‌गल विपाकी हैं)।

प्र. ३५६. पाप प्रकृति कितनी और कौन-कौन सी हैं?

उ. ३५६. सौ हैं–घातिया **४७**- असातावेदनीय **१**, नीचगोत्र **१**, नरकायु **१**, और नामकर्म की **५०**(नरकगति **१**, नरकगत्यानुपूर्वी **१**, तिर्यग्गति **१**, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी **१**, जाति में से आदि की **४** , संस्थान अन्त के **५**, संहनन अन्त के **५**, स्पर्शादिक **२०**, उपघात **१**, अप्रशस्तविहायोगति **१**, स्थावर **१**, सूक्ष्म **१**, अपर्याप्ति**१**, अनादेय **१**, अयश:कीर्ति **१**, अशुभ **१**, दुर्भग **१**, दु:स्वर **१**, अस्थिर **१**, साधारण **१**)।

प्र. ३५७. पुण्यप्रकृति कितनी और कौन-कौन सी हैं?

उ. ३५७. अड़सठ हैं–कर्म की समस्त प्रकृति **१४८** जिनमें से पाप की **१००**, प्रकृति घटाने से शेष रहीं **४८** और नामकर्म की स्पर्शादि **२०** प्रकृति पुण्य और पाप दोनों में गिनी जाती हैं, क्योंकि बीसों ही स्पर्शादिक किसी को इष्ट किसी को अनिष्ट होते हैं। इसलिए **४८** में स्पर्शादिक **२०** मिलाने से **६८** पुण्य प्रकृति होती हैं।

प्र. ३५८. स्थितिबंध किसको कहते हैं?

उ. ३५८. कर्मों में आत्मा के साथ रहने की मियाद के पड़ने को स्थिति बंध कहते हैं।

प्र. ३५९. आठों कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी कितनी है?

उ. ३५९. ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अन्तराय इन चारों कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस **२** कोडाकोड़ी सागर है। मोहनीय कर्म की सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है। नामकर्म और गोत्रकर्म की बीस **२** कोड़ाकोड़ी सागर है और आयुकर्म की तैंतीस सागर की है।

प्र. ३६०. आठों कर्मों की जघन्य स्थिति कितनी-कितनी हैं?

उ. ३६०. वेदनीय की बारह मुहूर्त्त, नाम तथा गोत्र की आठ **२** मुहूर्त्त और शेष के समस्त कर्मों की अन्तर्मुहूर्त्त **२** जघन्य स्थिति है।

प्र. ३६१. कोड़ाकोड़ी किसको कहते हैं?

उ. ३६१. एक करोड़ को एक करोड़ से गुणा करने पर जो लब्ध हो, उसको एक कोड़ाकोड़ी कहते हैं।

प्र. ३६२. सागर किसको कहते हैं?

उ. ३६२. दश कोड़ाकोड़ी अद्धापल्यों का एक सागर होता है।

प्र. ३६३. अद्धापल्य किसको कहते हैं?

उ. ३६३. दो हजार कोस गहरे और दो हजार कोस चौड़े गोल गड्डे में कैंची से जिसका दूसरा भाग न हो सके ऐसे मेंढे के बालों को भरना। जितने बाल उसमें समावैं, उनमें से एक २ बाल को सौ-सौ वर्ष बाद निकालना। जितने वर्षों में वे सब बाल निकल जावें, उतने वर्षों के जितने समय हों उसको व्यवहारपल्य कहते हैं। व्यवहारपल्य से असंख्यात गुणा उद्धारपल्य होता है। उद्धारपल्य से असंख्यात गुणा अद्धापल्य होता है।

प्र. ३६४. मुहूर्त्त किसको कहते हैं?

उ. ३६४. अड़तालीस मिनट का एक मुहूर्त्त होता है।

प्र. ३६५. अन्तर्मुहूर्त्त किसको कहते हैं?

उ. ३६५. आवली से ऊपर और मुहूर्त्त से नीचे के काल को अन्तर्मुहूर्त्त कहते हैं।

प्र. ३६६. आवली किसको कहते हैं?

उ. ३६६. एक श्वास में असंख्यात आवली होती हैं।

प्र. ३६७. स्वासोच्छ्वास-काल किसको कहते हैं?

उ. ३६७. नीरोग पुरुष की नाड़ी के एक बार चलने को स्वासोच्छ्वास-काल कहते हैं।

प्र. ३६८. एक मुहूर्त्त में कितने स्वासोच्छ्वास होते हैं?

उ. ३६८. तीन हजार सात सौ तिहत्तर (३७७३) होते हैं।

प्र. ३६९. अनुभागबंध किसको कहते हैं?

उ. ३६९. कर्मों के फल देने की शक्ति को अनुभागबन्ध कहते हैं।

प्र. ३७०. प्रदेशबन्ध किसको कहते हैं?

उ. ३७०. बँधने वाले कर्मों की संख्या के निर्णय को प्रदेशबन्ध कहते हैं।

प्र. ३७१. उदय किसको कहते हैं?

उ. ३७१. स्थिति को पूरी करके कर्म के फल देने को उदय कहते हैं।

प्र. ३७२. उदीरणा किसको कहते हैं?

उ. ३७२. स्थिति बिना पूरी किए ही कर्म के फल देने को उदीरणा कहते हैं।

प्र. ३७३. उपशम किसको कहते हैं?

उ. ३७३. द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के निमित्त से कर्म की शक्ति उदय ना होने को उपशम कहते हैं।

प्र. ३७४. उपशम के कितने भेद हैं?

उ. ३७४. दो हैं—एक अन्त:करणरूप उपशम, दूसरा सद्वस्थारूप उपशम।

प्र. ३७५. अन्त:करणरूप उपशम किसको कहते हैं?

उ. ३७५. अगामी काल में उदय आने योग्य कर्मपरमाणुओं को आगे पीछे उदय आने योग्य करने को अन्त:करणरूप उपशम कहते हैं।

प्र. ३७६. सदवस्थारूप उपशम किसको कहते हैं

उ. ३७६. वर्तमान समय को छोड़कर आगामी काल में उदय आने वाले कर्मों के सत्ता में रहने को सदवस्थारूप उपशम कहते हैं।

प्र. ३७७. क्षय किसको कहते हैं?

उ. ३७७. कर्म की आत्यन्तिक निवृत्ति को क्षय कहते हैं।

प्र. ३७८. क्षयोपशम किसको कहते हैं?

उ. ३७८. वर्तमान निषेक में सर्वघाति स्पर्द्धकों का उदयाभावी क्षय तथा देशघाती स्पर्द्धकों का उदय और आगामी काल में उदय आने वाले निषेकों का सदवस्थारूप उपशम ऐसी कर्म की अवस्था को क्षयोपशम कहते हैं।

प्र. ३७९. निषेक किसको कहते हैं?

उ. ३७९. एक समय में कर्म के जितने परमाणु उदय में आवें, उन सबके समूह को निषेक कहते हैं।

प्र. ३८०. स्पर्द्धक किसको कहते हैं?

उ. ३८०. वर्गणाओं के समूह को स्पर्द्धक कहते हैं।

प्र. ३८१. वर्गणा किसको कहते हैं?

उ. ३८१. वर्गों के समूह को वर्गणा कहते हैं।

प्र. ३८२. वर्ग किसको कहते हैं?

उ. ३८२. समान अविभागप्रतिच्छेदों के धारक प्रत्येक कर्म परमाणुओं को वर्ग कहते हैं।

प्र. ३८३. अविभागप्रतिच्छेद किसको कहते हैं?

उ. ३८३. शक्ति के अविभागी अंश को अविभागप्रतिच्छेद कहते हैं।

प्र. ३८४. इस प्रकरण में 'शक्ति' शब्द से कौन-सी शक्ति इष्ट है?

उ. ३८४. यहाँ शक्ति शब्द से कर्मों की अनुभाग रूप अर्थात् फल देने की शक्ति

इष्ट है।

प्र. ३८५. उदयाभावी क्षय किसको कहते हैं?

उ. ३८५. बिना फल दिए आत्मा से कर्म के सम्बन्ध छूटने को उद्याभावी क्षय कहते हैं।

प्र. ३८६. उत्कर्षण किसको कहते हैं?

उ. ३८६. कर्मों की स्थिति के बढ़ जाने को उत्कर्षण कहते हैं।

प्र. ३८७. अपकर्षण किसको कहते हैं?

उ. ३८७. कर्मों की स्थिति के घटने को अपकर्षण कहते हैं।

प्र. ३८८. संक्रमण किसको कहते हैं?

उ. ३८८. किसी कर्म के सजातीय एक भेद से दूसरे भेदरूप हो जाने को संक्रमण कहते हैं।

प्र. ३८९. समयप्रबद्ध किसको कहते हैं?

उ. ३८९. एक समय में जितने कर्मपरमाणु और नोकर्म परमाणु बँधें, उन सबको समयप्रबद्ध कहते हैं।

प्र. ३९०. गुणहानि किसको कहते हैं?

उ. ३९०. गुणाकार रूप हीन-हीन द्रव्य जिसमें पाए जाते हों, उसको गुणहानि कहते हैं। जैसे—किसी जीव ने एक समय में **६३००** तरेसठ सौ परमाणुओं के समूहरूप समयप्रबद्ध का बंध किया और उसमें **४८** समय की स्थिति पड़ी, उसमें गुणहानियों के समूह रूप नाना गुणहानि **६** उसमें से प्रथम गुणहानि के परमाणु **३२००** दूसरी गुणहानि के **१६००** तीसरी गुणहानि के **८००** चौथी के **४००** पांचवी के **२००** छठी के **१००** हैं। यहाँ उत्तरोत्तर गुणहानियों में गुणाकाररूप हीन **२** परमाणु (द्रव्य) पाए जाते हैं, इसलिए इसको गुणहानि कहते हैं।

प्र. ३९१. गुणहानि आयाम किसको कहते हैं?

उ. ३९१. एक गुणहानि के समय के समूह को गुणहानि आयाम कहते हैं। जैसे—ऊपर के दृष्टांत में **४८** समय की स्थिति में **६** गुणहानि थीं, तो **४८** में **६** का भाग देने से प्रत्येक गुणहानि का परिणाम **८** आया। यही गुणहानि आयाम कहलाता है।

प्र. ३९२. नाना गुणहानि किसको कहते हैं?

उ. ३९२. गुणहानियों के समूह को नाना गुणहानि कहते हैं। जैसे—ऊपर के दृष्टान्त में आठ-आठ समय की छह गुणहानि हैं, सो ही छह संख्या नाना

गुणहानि का परिमाण जानना।

प्र. ३९३. अन्योन्याभ्यस्तराशि किसको कहते हैं?

उ. ३९३. नानागुणहानिप्रमाण दूए माडंकर परस्पर गुणाकार करने से जो गुणनफल हो, उसको अन्योन्याभ्यस्तराशि कहते हैं। जैसे–ऊपर के दृष्टांत में **६** दूए माडंगर परस्पर गुणा करने से **६४** होते हैं। सो ही अन्योन्याभ्यस्तरराशि का परिमाण जानना।

प्र. ३९४. अन्तिम गुणहानि का परिमाण किस प्रकार से निकालना?

उ. ३९४. एक घाट अन्योन्याभ्यस्त राशि का भाग समयप्रबद्ध को देने से अन्तिम गुणहानि के द्रव्य का परिमाण निकलता है। जैसे–**६३००** में से एक घाट **६४** का भाग देने से जो **१००** पाए, सो ही अन्तिम गुणहानि का द्रव्य है।

प्र. ३९५. अन्य गुणहानियों के द्रव्य का परिमाण किस प्रकार निकालना चाहिए?

उ. ३९५. अन्तिम गुणहानि के द्रव्य को प्रथम गुणहानिपर्यन्त दूना करने से अन्य गुणहानियों के द्रव्य का परिमाण निकलता है। जैसे– **२००-४००-८००-१६००-३२००।**

प्र. ३९६. प्रत्येक गुणहानि में प्रथमादि समयों में द्रव्य का परिमाण किस प्रकार होता है?

उ. ३९६. निषेकहार को चयसे गुणा करने से प्रत्येक गुणहानि के प्रथम समय का द्रव्य निकलता है और प्रथम समय के द्रव्यों में से एक-एक चय घटाने से उत्तरोत्तर समयों के द्रव्य का परिमाण निकलता है। जैसे–निषेकहार **१६** को चय **३२** से गुणा करने पर प्रथम गुण हानि के प्रथम समय का द्रव्य **५१२** होता है और **५१२** में से एक एक चय अर्थात् बत्तीस **२** घटाने से दूसरे समय के द्रव्य का परिमाण **४८०**, तीससे का **४४८** चौथे का **४१६** पांचवे का **३८४** छठे का **३५२** सातवें का **३२०** और आठवें का **२८८** निकलता है। इसी प्रकार द्वितीयादिक गुणहानियों में भी प्रथमादि समयों के द्रव्यका परिमाण निकलना।

प्र. ३९७. निषेकहार किसको कहते हैं?

उ. ३९७. गुणहानि आयाम से दूने परिमाण को निषेकहार कहते हैं। जैसे– गुणहानिआयाम **८** से दूसरे **१६** को निषेकहार कहते हैं।

प्र. ३९८. चय किसको कहते हैं?

उ. ३९८. श्रेणीव्यवहार गणित में समान हानि या समान वृद्धि के परिमाण को चय

कहते हैं।

प्र. ३९९. इस प्रकरण में चय का परिमाण निकालने की क्या रीति है?

उ. ३९९. निषेकहार में एक अधिक गुणहानि आयाम का प्रमाण जोड़कर आधा करने से जो लब्ध आवे, उसको गुणहानिआयाम से गुणा करे। इस प्रकार गुणा करने से जो गुणनफल होय, उसका भाग विवक्षित गुणहानि के द्रव्य में देने से विवक्षित गुणहानि के चय का परिमाण निकलता है। जैसे– निषेकहार **१६** में एक अधिक गुणहानिआयाम **९** जोड़ने से **२५** हुए। पच्चीस के आधे १२॥ को गुणहानिआयाम **८** से गुणाकार करने से **१००** होते हैं। इस **१००** का भाग विवक्षित प्रथम गुणहानि के द्रव्य **३२००** में देने से प्रथम गुणहानिसम्बन्धी चय **३२** आया। इस ही प्रकार द्वितीय गुणहानि के चय का परिमाण **१६**, तृतीय का **८**, चतुर्थ का **४**, पंचम का **२** और अन्तिम का **१** जानना।

प्र. ४००. अनुभाग की रचना का क्रम क्या है?

उ. ४००. द्रव्य की अपेक्षा से जो रचना ऊपर बताई गई है, उसमें प्रत्येक गुणहानि के प्रथमादि समय सम्बन्धी द्रव्य को वर्गणा कहते हैं। और उन वर्गणाओं में जो परमाणु हैं, उनको वर्ग कहते हैं। प्रथम गुणहानि की प्रथम वर्गणा में जो **५१२** वर्ग हैं, उनमें अनुभागशक्ति के अविभागप्रतिच्छेद समान हैं और वे द्वितीयादि वर्गणाओं के वर्गों के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा सबसे न्यून अर्थात् जघन्य हैं। द्वितीयादि वर्गणा के वर्गों में एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद की अधिकता के क्रम से जिस वर्गणा पर्यन्त एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बढ़े, वहाँ तक की वर्गणाओं के समूह का नाम एक स्पर्द्धक है और जिस वर्गणा के वर्गों में युगपत् अनेक अविभाग प्रतिच्छेदों की वृद्धि होकर प्रथम वर्गणा के वर्गों के अविभागप्रतिच्छेदों की संख्या से दूनी संख्या हो जाए, वहाँ से दूसरे स्पर्द्धक का प्रारम्भ समझना। इस ही प्रकार जिन **२**वर्गणाओं के वर्गों में प्रथम वर्गणा के वर्गों के अविभागप्रतिच्छेदों की संख्या से तिगुणे, चौगुणे आदि अविभागप्रतिच्छेद होंय, वहाँ से तीसरे, चौथे आदि स्पर्द्धकों का प्रारम्भ समझना। इस प्रकार एक गुणहानि में अनेक स्पर्द्धक होते हैं।

प्र. ४०१. आस्रव किसको कहते हैं?

उ. ४०१. बन्ध के कारण को आस्रव कहते हैं।

प्र. ४०२. आस्रव के कितने भेद हैं?

उ. ४०२. चार हैं—द्रव्यबंध का निमित्त कारण १, द्रव्यबंध का उपादानकारण २, भावबंध निमित्त कारण ३, भावबंध का उपादान कारण ४।

प्र. ४०३. कारण किसको कहते हैं?

उ. ४०३. कार्य की उत्पादक सामग्री को कारण कहते हैं।

प्र. ४०४. कारण के कितने भेद हैं?

उ. ४०४. दो हैं—एक समर्थ कारण, दूसरा असमर्थ कारण।

प्र. ४०५. समर्थ कारण किसको कहते हैं?

उ. ४०५. प्रतिबंध का अभाव होने पर सहकारी समस्त सामग्रियों के सद्भाव को समर्थ कारण कहते हैं। समर्थ कारण के होने पर अनन्तर समय में कार्य की उत्पत्ति नियम से होती है।

प्र. ४०६. असमर्थ कारण किसको कहते हैं?

उ. ४०६. भिन्न २ प्रत्येक सामग्री को असमर्थ कारण कहते हैं। असमर्थ कारण कार्य का नियामक नहीं है।

प्र. ४०७. सहकारी सामग्री के कितने भेद हैं?

उ. ४०७. दो हैं—एक निमित्तकारण, दूसरा उपादानकारण।

प्र. ४०८. निमित्तकारण किसको कहते हैं?

उ. ४०८. जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप न परिणमें किन्तु कार्य की उत्पत्ति में सहायक हों, उनको निमित्तकारण कहते हैं। जैसे—घट की उत्पत्ति में कुंभकार, दंड, चक्र आदि।

प्र. ४०९. उपादानकारण किसको कहते हैं?

उ. ४०९. जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमै, उसको उपादानकारण कहते हैं। जैसे—घट की उत्पत्ति में मृत्तिका। अनादिकाल से द्रव्य में जो पर्यायों का प्रवाह चला आ रहा है, उसमें अनन्तर पूर्वक्षणवर्त्ती पर्याय उपादान कारण है और अनन्तर उत्तरक्षणवर्त्ती पर्याय कार्य है।

प्र. ४१०. द्रव्यबंध किसको कहते हैं?

उ. ४१०. कार्माणस्कंधरूप पुद्गल द्रव्य में आत्मा के साथ सम्बन्ध होने की शक्ति को द्रव्यबंध कहते हैं।

प्र. ४११. भावबंध किसको कहते हैं?

उ. ४११. आत्मा के योगकषायरूप भावों को भावबंध कहते हैं।

प्र. ४१२. द्रव्यबंध का निमित्तकारण क्या है?

उ. ४१२. आत्मा के योगकषायरूप परिणाम द्रव्यबंध के निमित्तकारण है।

प्र. ४१३. द्रव्यबंध का उपादानकारण क्या है?

उ. ४१३. बंध होने के पूर्वक्षण में बंध होने के सन्मुख कार्माण स्कन्ध को द्रव्यबंध का उपादानकारण कहते हैं।

प्र. ४१४. भावबंध का निमित्त कारण क्या है?

उ. ४१४. उदय तथा उदीरणा अवस्था को प्राप्त पूर्वबद्ध कर्म भावबंध का निमित्त कारण है।

प्र. ४१५. भावबंध का उपादान कारण क्या है?

उ. ४१५. भावबंध से विवक्षित समय के अनंतर पूर्वक्षणवर्ती योगकषायरूप आत्मा की पर्याय विशेष को भावबंध का उपादान कारण कहते हैं।

प्र. ४१६. भावास्त्रव किसको कहते हैं?

उ. ४१६. द्रव्यबंध के निमित्तकारण अथवा भावबंध के उपादानकारण को भावास्त्रव कहते हैं।

प्र. ४१७. द्रव्यास्त्रव किसको कहते हैं?

उ. ४१७. द्रव्यबंध के उपादानकारण अथवा भावबंध के निमित्तकारण को द्रव्यास्त्रव कहते हैं।

प्र. ४१८. प्रकृतिबंध और अनुभागबंध में क्या भेद है?

उ. ४१८. प्रत्येक प्रकृति के भिन्न २ उपादानशक्तियुक्त अनेक भेदरूप कार्माणस्कंध का आत्मा से सम्बन्ध होने को प्रकृतिबंध कहते हैं और उन ही स्कंधों में फलदानशक्ति के तारतम्य को (न्यूनाधिकता को) अनुभागबंध कहते हैं।

प्र. ४१९. समस्त प्रकृतियों के बंध का कारण सामान्यतया योग है या उसमें कुछ विशेषता है?

उ. ४१९. जिस प्रकार भिन्न २ उपादानशक्तियुक्त नानाप्रकार के भोजनों को मनुष्य हस्तद्वारा इच्छाविशेषपूर्वक ग्रहण करता है और विशेष इच्छा के अभाव में उदरपूरण करने के लिए भोजनसामान्य का ग्रहण करता है, उस ही प्रकार यह जीव विशेष कषाय के अभाव में योगमात्र से केवल सातावेदनीय रूप कर्म को ग्रहण करता है परन्तु वह योग यदि किसी कषायविशेष से अनुरंजित हो तो अन्यान्यप्रकृतियों का भी बंध करता है।

प्र. ४२०. प्रकृतिबंध के कारणत्व की अपेक्षा से आस्त्रव कितने भेद हैं?

उ. ४२०. पांच हैं—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।

प्र. ४२१. मिथ्यात्व किसको कहते हैं?

उ. ४२१. मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से अदेव में देवबुद्धि, अतत्त्व में तत्त्वबुद्धि,

अधर्म में धर्मबुद्धि, इत्यादि विपरीताभिनिवेशरूप जीव के परिणाम को मिथ्यात्व कहते हैं।

प्र. ४२२. मिथ्यात्व के कितने भेद हैं?

उ. ४२२. पांच हैं–ऐकान्तिक मिथ्यात्व, विपरीतमिथ्यात्व, सांशयिक मिथ्यात्व, आज्ञानिक मिथ्यात्व और वैनयिक मिथ्यात्व।

प्र. ४२३. ऐकान्तिक मिथ्यात्व किसको कहते हैं?

उ. ४२३. धर्म धर्मी के ''यह ऐसा ही है अन्यथा नहीं'' इत्यादि अत्यन्त अभिसन्निवेश को (अभिप्राय को) ऐकान्तिक मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे–बौद्धमतावलंबी पदार्थ को सर्वथा क्षणिक मानता है।

प्र. ४२४. विपरीतमिथ्यात्व किसको कहते हैं?

उ. ४२४. सग्रंथ निर्ग्रथ है, केवली ग्रासाहारी है, इत्यादि रूचि को विपरीत मिथ्यात्व कहते हैं।

प्र. ४२५. सांशयिक मिथ्यात्व किसको कहते हैं?

उ. ४२५. धर्म अहिंसा लक्षण है या नहीं इत्यादि मतिद्वैविध्य को सांशयिक मिथ्यात्व कहते हैं।

प्र. ४२६. आज्ञानिक मिथ्यात्व किसको कहते हैं?

उ. ४२६. जहाँ हिताहित विवेक का कुछ भी सद्भाव नहीं हो, उसको आज्ञानिकमिथ्यात्व कहते हैं। जैसे–पशुवध को धर्म समझना।

प्र. ४२७. वैनयिकमिथ्यात्व किसको कहते हैं?

उ. ४२७. समस्त देव तथा समस्त मतों में समदर्शीपने को वैनयिक मिथ्यात्व कहते हैं।

प्र. ४२८. अविरति किसको कहते हैं?

उ. ४२८. हिंसादिक पापों में तथा इन्द्रिय और मन के विषयों में प्रवृत्ति होने को अविरति कहते हैं।

प्र. ४२९. अविरति के कितने भेद हैं?

उ. ४२९. तीन हैं–अनन्तानुबंधिकषायोदयजनित, अप्रत्याख्यानावरणकषायोदयजनित और प्रत्याख्यानावरणकषायोदयजनित।

प्र. ४३०. प्रमाद किसको कहते हैं?

उ. ४३०. संज्वलन और नोकषाय के तीव्र उदय से निरतिचार चारित्र पालने में अनुत्साह को तथा स्वरूप की असावधानता को प्रमाद कहते हैं।

प्र. ४३१. प्रमाद के कितने भेद हैं?

उ. ४३१. पन्द्रह भेद हैं—विकथा ४ (स्त्रीकथा, राष्ट्रकथा, भोजनकथा, राजकथा), कषाय ४ (संज्वलन के तीव्रोदयजनित क्रोध, मान, माया, लोभ), इन्द्रियों के विषय ५, निद्रा एक और स्नेह एक।

प्र. ४३२. कषाय किसको कहते हैं?

उ. ४३२. संज्वलन और नोकषाय के मंद उदय से प्रादुर्भूत आत्मा के परिणामविशेषों को कषाय कहते हैं।

प्र. ४३३. योग किसको कहते हैं?

उ. ४३३. मनोवर्गणा अथवा कायवर्गणा (आहारवर्गणा तथा कार्माणवर्गणा) और वचनवर्गणा के अवलंबन से कर्म नोकर्म को ग्रहण करने की शक्तिविशेष को योग कहते हैं।

प्र. ४३४. योग के कितने भेद हैं?

उ. ४३४. पन्द्रह भेद हैं—मनोयोग ४ (सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग और अनुभयमनोयोग) काययोग ७ (औदारिक, औदाारिकमिश्र, वैक्रियक, वैक्रियमिश्र, अहारक, आहारकमिश्र, और कार्माण), वचनयोग ४ (सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग और अनुभयवचनयोग)।

प्र. ४३५. मिथ्यात्व की प्रधानता से किन-किन प्रकृतियों का बंध होता है?

उ. ४३५. सोलह प्रकृतियों का बंध होता है—मिथ्यात्व, हुंडकसंस्थान, नपुंसकवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, असंप्राप्तासृपाटिका, जाति ४ एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय), स्थावर, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण।

प्र. ४३६. अनंतानुबंधिकषायोदयजनित अविरति से किन-किन प्रकृतियों का बंध होता है?

उ. ४३६. पच्चीस प्रकृतियों का बंध होता है—अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय, अप्रशस्तविहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यगायु, उद्योत, संस्थान ४ न्योग्रोध, स्वाति, कब्जक, वामन, संहनन ४ (वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच और कीलित)।

प्र. ४३७. अप्रत्याख्यानावरणकषायोदयजनित अविरति से किन-किन प्रकृतियों का बंध होता है?

उ. ४३७. दस प्रकृतियों का—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिकशरीर, औदारिकांगोपांग और

वज्रवृषभनाराचसंहनन।

प्र. ४३८. प्रत्याख्यानावरणकषायोदयजनित अविरति से किन-किन प्रकृतियों का बंध होता है?

उ. ४३८. चार प्रकृतियों का अर्थात्—प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ का।

प्र. ४३९. प्रमाद से कितनी प्रकृतियों का बंध होता है?

उ. ४३९. छह प्रकृतियों का अर्थात् अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयश:कीर्ति, अरति और शोक का।

प्र. ४४०. कषाय के उदय से कितनी प्रकृतियों का बंध होता है?

उ. ४४०. अट्ठावन प्रकृतियों का अर्थात्—देवायु निद्रा, प्रचला, तीर्थंकर निर्माण।, प्रशस्तविहायोगति। पंचेन्द्रिय जाति। तेजस शरीर। कार्माण शरीर। आहारक शरीर आहारकांगोपांग। समचतुरस्त्र संस्थान। वैक्रियकशरीर। वैक्रियकांगोपांग। देवगति। देवगत्यानुपूर्वी। रूप। रस। गंध। स्पर्श। अगुरुलघु। उपघात। परघात। उच्छवास। त्रस। बादर। पर्याप्त। प्रत्येक। स्थिर। शुभ। सुभग। सुस्वर। आदेय हास्य। रति। जुगुप्सा। भय। पुरुषवेद। संज्वलन। क्रोध। मान। माया। लोभ। मतिज्ञानावरण। श्रुतज्ञानावरण। अवधिज्ञानावरण। मन:पर्ययज्ञानावरण। केवलज्ञानावरण। चक्षुदर्शनावरण। अचक्षुदर्शनावरण। अवधिदर्शनावरण। केवलदर्शनावरण। दानान्तराय। भोगान्तराय। उपभोग अन्तराय। वीर्यान्तराय। लाभान्तराय। यशस्कीर्ति। उच्चगोत्र। इन 58 प्रकृतियों का बंध होता है।

प्र. ४४१. योग के निमित्त से किस प्रकृति का बंध होता है?

उ. ४४१. एक साता वेदनीय का बंध होता है।

प्र. ४४२. कर्म प्रकृति सर्व १४८ हैं और कारण केवल १२० के लिखे, सो २८ प्रकृतियों का क्या हुआ?

उ. ४४२. स्पर्शादि 20 की जगह 4 का ग्रहण किया गया है इस कारण 16 तो ये घटी और पांचों शरीरों के पांचों बंधन पांचों संघात का ग्रहण नहीं किया गया इस कारण दस ये घटी। और सम्यकमिथ्यात्व तथा सम्यकप्रकृति मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियों का बंध नहीं होता क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव पूर्वबद्धमिथ्यात्व प्रकृति के तीन खंड करता है तब इन दो प्रकृतियों का प्रादुर्भाव होता है इस कारण दो प्रकृतियाँ घट गईं।

प्र. ४४३. द्रव्यास्त्रव के कितने भेद हैं?

उ. ४४३. दो हैं—एक साम्परायिक दूसरा ईर्यापथ।

प्र. ४४४. साम्परायिक आस्त्रव किसको कहते हैं?

उ. ४४४. जो कर्म परमाणु जीव के कषाय के भावों के निमित्त से आत्मा में कुछ काल के लिए स्थिति को प्राप्त हो उनके आस्त्रव को साम्परायिक आस्त्रव कहते हैं।

प्र. ४४५. ईर्यापथ आस्त्रव किसको कहते हैं?

उ. ४४५. जिन कर्म परमाणुओं का बंध, उदय और निर्जरा एक ही समय में हो, उनके आस्त्रव को ईर्यापथ आस्त्रव कहते हैं।

प्र. ४४६. इन दोनों प्रकार के आस्त्रवों के स्वामी कौन-कौन हैं?

उ. ४४६. साम्परायिक आस्त्रव का स्वामी कषाय सहित और ईर्यापथ का स्वामी कषाय रहित आत्मा होता है।

प्र. ४४७. पुण्यास्त्रव और पापास्त्रव का कारण क्या है?

उ. ४४७. शुभ योग से पुण्यास्त्रव और अशुभ योग से पापास्त्रव होता है।

प्र. ४४८. शुभ योग और अशुभ योग किसको कहते हैं?

उ. ४४८. शुभ परिणाम से उत्पन्न योग को शुभयोग और अशुभ परिणाम से उत्पन्न योग को अशुभ योग कहते हैं।

प्र. ४४९. जिस समय जीव के शुभ योग होता है उस समय पापप्रकृतियों का आस्त्रव होता है? या नहीं?

उ. ४४९. होता है।

प्र. ४५०. यदि होता है, तो शुभ योग पापास्त्रव का भी कारण ठहरा?

उ. ४५०. नहीं ठहरा। क्योंकि जिस समय जीव में शुभयोग होता है उस समय पुण्यप्रकृतियों में स्थिति, अनुभाग अधिक पड़ता है और पापप्रकृतियों में कम पड़ता है और इस ही प्रकार जब अशुभ योग होता है तब पापप्रकृतियों में स्थिति अनुभाग अधिक पड़ता है और पुणयप्रकृतियों में कम। दशाध्याय तत्त्वार्थसूत्र के छट्ठे अध्याय में ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के आस्त्रव के कारण जो तत्प्रदोषनिह्नवादिक कहे गए हैं, उसका अभिप्राय यही है कि, उन २ भावों से उन २ प्रकृतियों में स्थिति अनुभाग अधिक २ पड़ते हैं। अन्य जो ज्ञानावरणादिक पापप्रकृतियों का आस्त्रव दशवें गुणस्थान तक सिद्धान्तशास्त्र में कहा है उससे विरोध आवेगा अथवा वहाँ शुभयोग के अभाव का प्रसंग आवेगा। क्योंकि शुभयोग दशवें गुणस्थान से पहिले २ ही होता है।

इति तृतीयोऽध्यायः समाप्तः॥ ३॥

❀ ❀ ❀

अथ चतुर्थोऽध्यायः प्रारम्भ्यते।

प्र. ४५१. जीव के असाधारण भाव कितने हैं?

उ. ४५१. पांच हैं—औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक।

प्र. ४५२. औपशमिक भाव किसको कहते हैं?

उ. ४५२. जो किसी कर्म के उपशम से हो, उसको औपशमिक भाव कहते हैं।

प्र. ४५३. क्षायिक भाव किसको कहते हैं?

उ. ४५३. जो किसी कर्म के क्षय से उत्पन्न हो, उसको क्षायिक भाव कहते हैं।

प्र. ४५४. क्षायोपशमिक भाव किसको कहते हैं?

उ. ४५४. जो कर्मों के क्षयोपशम से हो, उसको क्षायोपशमिक भाव कहते हैं।

प्र. ४५५. औदायिक भाव किसको कहते हैं?

उ. ४५५. जो कर्मों के उदय से हो, उसको औदयिक भाव कहते हैं।

प्र. ४५६. पारिणामिक भाव किसको कहते हैं?

उ. ४५६. जो उपशम, क्षय, क्षयोपशम व उदय की अपेक्षा न रखता हुआ जीव का स्वभावमात्र हो, उसको पारिणामिक भाव कहते हैं।

प्र. ४५७. औपशमिक भाव के कितने भेद हैं?

उ. ४५७. दो हैं—एक सम्यक्त्व भाव, दूसरा चारित्रभाव।

प्र. ४५८. क्षायिकभाव के कितने भेद हैं?

उ. ४५८. नौ हैं—क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दर्शन, क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य।

प्र. ४५९. क्षायोपशमिक भाव के कितने भेद हैं?

उ. ४५९. अठारह—सम्यक्त्व, चारित्र, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, देशसंयम, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य।

प्र. ४६०. औदयिक भाव कितने हैं?

उ. ४६०. इक्कीस हैं—गति ४, कषाय ४, लिंग ३, मिथ्यादर्शन १, अज्ञान १,

असंयम १, असिद्धत्व १, लेश्या ६ (पीत, पद्म, शुक्ल, कृष्ण, नील, कापोत)।

प्र. ४६१. पारिणामिक भाव कितने हैं?

उ. ४६१. तीन हैं—जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व।

प्र. ४६२. लेश्या किसको कहते हैं?

उ. ४६२. कषाय के उदय करके अनुरंजित योगों की प्रवृत्ति को भावलेश्या कहते हैं और शरीर के पीतपद्मादि वर्णों को द्रव्यलेश्या कहते हैं।

प्र. ४६३. उपयोग किसको कहते हैं?

उ. ४६३. जीव के लक्षणरूप चैतन्यानुविधायी परिणाम को उपयोग कहते हैं।

प्र. ४६४. उपयोग के कितने भेद है?

उ. ४६४. दो हैं—एक दर्शनोपयोग, दूसरा ज्ञानोपयोग।

प्र. ४६५. दर्शनोपयोग के कितने भेद हैं?

उ. ४६५. चार हैं—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

प्र. ४६६. ज्ञानोपयोग के कितने भेद हैं?

उ. ४६६. आठ हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान।

प्र. ४६७. संज्ञा किसको कहते हैं?

उ. ४६७. अभिलाषा को (वांछा को) संज्ञा कहते हैं।

प्र. ४६८. संज्ञा के कितने भेद हैं?

उ. ४६८. चार हैं—आहार, भय, मैथुन और परिग्रह।

प्र. ४६९. मार्गणा किसको कहते हैं?

उ. ४६९. जिन २ धर्मविशेषों से जीवों का अन्वेषण (खोज) किया जाए, उन २ धर्मविशेषों को मार्गणा कहते हैं।

प्र. ४७०. मार्गणा के कितने भेद हैं?

उ. ४७०. चौदह हैं—गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहार।

प्र. ४७१. गति किसको कहते हैं?

उ. ४७१. गतिनामा नामकर्म के उदय से जीव की पर्यायविशेष को गति कहते हैं।

प्र. ४७२. गति के कितने भेद हैं?

उ. ४७२. चार हैं—नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति, देवगति।

प्र. ४७३. इन्द्रिय किसको कहते हैं?

उ. ४७३. आत्मा के लिङ्गको (चिन्ह को)इन्द्रिय कहते हैं।

प्र. ४७४. इन्द्रिय के कितने भेद हैं?

उ. ४७४. दो हैं—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय।

प्र. ४७५. द्रव्येन्द्रिय किसको कहते हैं?

उ. ४७५. निर्वृत्ति और उपकरण को द्रव्येन्द्रिय कहते हैं।

प्र. ४७६. निर्वृत्ति किसको कहते हैं?

उ. ४७६. प्रदेशों की रचना विशेष को निर्वृत्ति कहते हैं।

प्र. ४७७. निर्वृत्ति के कितने भेद हैं?

उ. ४७७. दो हैं—बाह्य और आभ्यन्तर।

प्र. ४७८. बाह्य निवृति किसको कहते हैं?

उ. ४७८. इन्द्रियों के आकाररूप पुद्‌गल की रचना विशेष को बाह्य निर्वृत्ति कहते हैं।

प्र. ४७९. आभ्यन्तर निर्वृत्ति किसको कहते हैं?

उ. ४७९. आत्मा के विशुद्धप्रदेशों की इन्द्रियाकार रचना विशेष को आभ्यन्तर निर्वृत्ति कहते हैं।

प्र. ४८०. उपकरण किसको कहते हैं?

उ. ४८०. जो निर्वृत्ति का उपकार (रक्षा) करे, उसको उपकरण कहते हैं।

प्र. ४८१. उपकरण के कितने भेद हैं?

उ. ४८१. दो हैं—आभ्यन्तर और बाह्य।

प्र. ४८२. आभ्यन्तर उपकरण किसको कहते हैं?

उ. ४८२. नेत्रइन्द्रिय में कृष्ण शुक्ल मंडल की तरह सब इन्द्रियों में जो निर्वृत्ति का उपकार करे, उसको आभ्यन्तर उपकरण कहते हैं।

प्र. ४८३. बाह्योपकरण किसको कहते हैं?

उ. ४८३. नेद्धेन्द्रिय में पलक वगैरह की तरह जो निर्वृत्ति का उपकार करें, उसको बाह्योपकरण कहते हैं।

प्र. ४८४. भावेन्द्रिय किसको कहते हैं?

उ. ४८४. लब्धि और उपयोग को भावेन्द्रिय कहते हैं।

प्र. ४८५. लब्धि किसको कहते हैं?

उ. ४८५. ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम को लब्धि कहते हैं।

प्र. ४८६. उपयोग किसको कहते हैं?

उ. ४८६. क्षयोपशमहेतुक चेतना के परिणाम विशेष को उपयोग कहते हैं।

प्र. ४८७. द्रव्येंद्रियों के कितने भेद हैं?

उ. ४८७. पांच हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र।

प्र. ४८८. स्पर्शनेन्द्रिय किसको कहते हैं?

उ. ४८८. जिसके द्वारा आठ प्रकार के स्पर्श का ज्ञान हो, उसको स्पर्शनेन्द्रिय कहते हैं।

प्र. ४८९. रसनेन्द्रिय किसको कहते हैं?

उ. ४८९. जिसके द्वारा पांच प्रकार के रस का (स्वाद का)ज्ञान हो, उसको रसनेन्द्रिय कहते हैं।

प्र. ४९०. घ्राणेन्द्रिय किसको कहते हैं?

उ. ४९०. जिसके द्वारा दो प्रकार की गंध का (सुगंध दुर्गंध का) ज्ञान हो, उसको घ्राणेन्द्रिय कहते हैं।

प्र. ४९१. चक्षुरिन्द्रिय किसको कहते हैं?

उ. ४९१. जिसके द्वारा पांच प्रकार के वर्ण का (रंग का)ज्ञान हो, उसको चक्षुरिन्द्रिय कहते हैं।

प्र. ४९२. श्रोत्रेन्द्रिय किसको कहते हैं?

उ. ४९२. जिसके द्वारा सात प्रकार के स्वरों का ज्ञान हो, उसको श्रोत्रेन्द्रिय कहते हैं।

प्र. ४९३. किन-किन जीवों के कौन-कौन सी इन्द्रियाँ होती हैं?

उ. ४९३. पृथ्वी, अप, तेज, वायु और वनस्पति इन जीवों के एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है। कृमि आदि जीवों के स्पर्शन और रसना दो इन्द्रियाँ होती हैं। पिपीलिका (चिंटी) वगैरह जीवों के स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं। भ्रमर मक्षिका वगैरह के श्रोत्र के बिना चार इन्द्रियाँ होती हैं। घोड़े आदि पशु, मनुष्य, देव और नारकी जीवों के पांचों इन्द्रियाँ होती हैं।

प्र. ४९४. काय किसको कहते हैं?

उ. ४९४. त्रस स्थावर नामकर्म के उदय से आत्मा के प्रदेश प्रचय को काय कहते हैं।

प्र. ४९५. त्रस किसको कहते हैं?

उ. ४९५. त्रसनामा नामकर्म के उदय से द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियों में जन्म लेने वाले जीवों को त्रस कहते हैं।

प्र. ४९६. स्थावर किसको कहते हैं?

उ. ४९६. स्थावरनामा नामकर्म के उदय से पृथ्वी, अप, तेज, वायु और वनस्पति में जन्म लेने वाले जीवों को स्थावर कहते हैं।

प्र. ४९७. बादर किसको कहते हैं?

उ. ४९७. पृथ्वीआदिक से जो रुक जाए व दूसरों को रोके, उसको बादर कहते हैं।

प्र. ४९८. सूक्ष्म किसको कहते हैं?

उ. ४९८. जो पृथ्वीआदिक से स्वयं न रुके और न दूसरे पदार्थों को रोके, उसको सूक्ष्म कहते हैं?

प्र. ४९९. वनस्पति के कितने भेद हैं?

उ. ४९९. दो हैं—प्रत्येक और साधारण।

प्र. ५००. प्रत्येक वनस्पति किसको कहते हैं?

उ. ५००. एक शरीर का जो एक ही स्वामी हो, उसको प्रत्येक वनस्पति कहते हैं।

प्र. ५०१. साधारण वनस्पति किसको कहते हैं?

उ. ५०१. जिन जीवों के आहार, आयु श्वासोच्छ्‌वास और काय ये साधारण (समान अथवा एक) हों, उनको साधारण कहते हैं। जैसे—कंदमूलादिक।

प्र. ५०२. प्रत्येक वनस्पति के कितने भेद हैं?

उ. ५०२. दो हैं—सप्रतिष्ठित प्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक।

प्र. ५०३. सप्रतिष्ठित प्रत्येक किसको कहते हैं?

उ. ५०३. जिस प्रत्येक वनस्पति के आश्रय अनेक साधारण वनस्पति शरीर हों, उसको सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं।

प्र. ५०४. अप्रतिष्ठित प्रत्येक किसको कहते हैं?

उ. ५०४. जिस प्रत्येक वनस्पति के आश्रय कोई भी साधारण वनस्पति न हो, उसको अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं।

प्र. ५०५. साधारण वनस्पति सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति में ही होते हैं या और कहीं भी होते हैं।

उ. ५०५. पृथ्वी, अप, तेज, वायु, केवली भगवान, आहारक शरीर, देव, नारकी, इन आठ के सिवाय सब संसारी जीवों के शरीर साधारण अर्थात् निगोद के आश्रय हैं।

प्र. ५०६. साधारण वनस्पति के (निगोद के) कितने भेद हैं?

उ. ५०६. दो भेद हैं— एक नित्यनिगोद और एक इतरनिगोद।

प्र. ५०७. नित्यनिगोद किसको कहते हैं?

उ. ५०७. जिसने कभी भी निगोद के सिवाय दूसरी पर्याय नहीं पाई अथवा जिसने

कभी भी निगोद के सिवाय दूसरी पर्याय न तो पाई और न पावेगा, उसको नित्यनिगोद कहते हैं

प्र. ५०८. इतरनिगोद किसको कहते हैं?

उ. ५०८. जो निगोद से निकलकर दूसरी पर्याय पाकर फिर निगोद में उत्पन्न हो, उसको इतरनिगोद कहते हैं।

प्र. ५०९. बादर और सूक्ष्म कौन-कौन से जीव हैं?

उ. ५०९. पृथ्वी, अप, तेज, वायु नित्यनिगोद और इतरनिगोद ये ६ बादर और सूक्ष्म दोनों प्रकार के होते हैं। बाकी के सब जीव बादर ही होते हैं सूक्ष्म नहीं होते हैं।

प्र. ५१०. योग किसको कहते हैं?

उ. ५१०. पुद्‌गलविपाकी शरीर और अंगोपांगनामा नामकर्म के उदय से मनोवर्गणा, वचनवर्गणा तथा कायवर्गणा के अवलंबन से कर्म नोकर्म को ग्रहण करने की जीव की शक्तिविशेष को भावयोग कहते हैं। इस ही भावयोग के निमित्त से आत्मप्रदेश के परिस्पंद को (चंचल होने को) द्रव्ययोग कहते हैं।

प्र. ५११. योग के कितने भेद हैं?

उ. ५११. पन्द्रह हैं—मनोयोग ४, वचनयोग ४, और कायायोग ७।

प्र. ५१२. वेद किसको कहते हैं?

उ. ५१२. नोकषाय के उदय से उत्पन्न हुई जीव के मैथुन करने की अभिलाषा को भाववेद कहते हैं और नामकर्म के उदय से आविर्भूत जीव के चिन्ह विशेष को द्रव्य वेद कहते हैं।

प्र. ५१३. वेद के कितने भेद हैं?

उ. ५१३. तीन हैं—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद।

प्र. ५१४. कषाय किसको कहते हैं?

उ. ५१४. जो आत्मा के सम्यक्त्व, देशचारित्र, सकलचारित्र और यथाख्यातचारित्ररूप परिणामों को घाते, उसको कषाय कहते हैं।

प्र. ५१५. कषाय के कितने भेद हैं?

उ. ५१५. सोलह भेद हैं—अनन्तानुबंधी ४, अप्रत्याख्यानावरणीय ४, प्रत्याख्यानावरणीय ४, और संज्वलन ४।

प्र. ५१६. ज्ञानमार्गणा के कितने भेद हैं?

उ. ५१६. मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल तथा कुमति, कुश्रुत, कुअवधि।

प्र. ५१७. संयम किसको कहते हैं?

उ. ५१७. अहिंसादिक पांच व्रत धारण करने, ईर्यापथ आदि पांच समितियों को पालने, क्रोधादि कषायों के निग्रह करने, मनोयोगादिक तीनों योगों को रोकने, स्पर्शन आदि पांचों इन्द्रियों के विजय करने को संयम कहते हैं।

प्र. ५१८. संयममार्गणा के कितने भेद हैं?

उ. ५१८. सात हैं—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात, संयमासंयम और असंयम।

प्र. ५१९. दर्शनमार्गणा के कितने भेद हैं?

उ. ५१९. चार हैं— चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधि दर्शन, केवलदर्शन।

प्र. ५२०. लेश्यामार्गणा के कितने भेद हैं?

उ. ५२०. छह भेद हैं—कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल।

प्र. ५२१. भव्यमार्गणा के कितने भेद हैं?

उ. ५२१. दो हैं—भव्य और अभव्य।

प्र. ५२२. सम्यक्त्व किसको कहते हैं?

उ. ५२२. तत्त्वार्थश्रद्धान को सम्यक्त्व कहते हैं।

प्र. ५२३. सम्यक्त्वमार्गणा के कितने भेद हैं?

उ. ५२३. छह भेद हैं—उपशमसम्यक्त्व, क्षयोपशमसम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सासादन और मिथ्यात्व।

प्र. ५२४. संज्ञी किसको कहते हैं?

उ. ५२४. जिसमें संज्ञा हो, उसको संज्ञी कहते हैं।

प्र. ५२५. संज्ञा किसको कहते हैं?

उ. ५२५. द्रव्यमन के द्वारा शिक्षादि ग्रहण करने को संज्ञा कहते हैं।

प्र. ५२६. संज्ञीमार्गणा के कितने भेद हैं?

उ. ५२६. दो हैं—संज्ञी और असंज्ञी।

प्र. ५२७. आहार किसको कहते हैं?

उ. ५२७. औदारिक आदिक शरीर और पर्याप्ति के योग्य पुद्गलों के ग्रहण करने को आहार कहते हैं।

प्र. ५२८. आहारमार्गणा के कितने भेद हैं?

उ. ५२८. दो हैं—आहारक और अनाहारक।

प्र. ५२९. अनाहारक जीव किस किस अवस्था में होता है?

उ. ५२९. विग्रह गति, और किसी **२** समुद्घात में और अयोग केवली अवस्था में

जीव अनाहारक होता है।

प्र. ५३०. विग्रहगति किसको कहते हैं?

उ. ५३०. एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर के प्रति गमन करने को विग्रहगति कहते हैं।

प्र. ५३१. विग्रहगति में कौन सा योग होता है?

उ. ५३१. कार्माण योग होता है।

प्र. ५३२. विग्रहगति के कितने भेद हैं?

उ. ५३२. चार हैं—ऋजु गति, पाणिमुक्ता गति, लांगलिका गति, गोमूत्रिका गति।

प्र. ५३३. इन विग्रह गतियों में कितना-कितना काल लगता है?

उ. ५३३. ऋजुगति में एक समय, पाणिमुक्ता अर्थात् एक मोड़े वाली गति में दो समय, लांगलिका गति में तीन समय और गोमूत्रिका में चार समय लगते हैं।

प्र. ५३४. इन गतियों में अनाहारक अवस्था कितने समय तक रहती है?

उ. ५३४. ऋजुगति वाला जीव अनाहारक नहीं होता, पाणिमुक्तागति में एक समय, लांगलिका में दो समय और गोमूत्रिका में तीन समय अनाहारक रहता है।

प्र. ५३५. मोक्ष जाने वाले जीव के कौन सी गति होती है?

उ. ५३५. ऋजु गति होती है और वह जीव अनाहारक ही होता है।

प्र. ५३६. जन्म कितने प्रकार का होता है?

उ. ५३६. तीन प्रकार का—उपपादजन्म, गर्भजन्म और सम्मूर्च्छनजन्म।

प्र. ५३७. उपपादजन्म किसको कहते हैं।

उ. ५३७. जो जीव देवों की उपपादशय्या तथा नारकियों के योनिस्थान में पहुँचते ही अन्तमुहूर्त्त में युवावस्था को प्राप्त हो जाए, उस जन्म को उपपादजन्म कहते हैं।

प्र. ५३८. गर्भजन्म किसे कहते हैं?

उ. ५३८. माता पिता के शोणितशुक्र से जिनका शरीर बने, उनके जन्म को गर्भजन्म कहते हैं।

प्र. ५३९. सम्मूर्च्छनजन्म किसको कहते हैं?

उ. ५३९. जो मातापिता की अपेक्षा के बिना इधर उधर के परमाणुओं को शरीर रूप परिणमावै, उसके जन्म को सम्मूर्च्छन जन्म कहते हैं।

प्र. ५४०. किन किन जीवों के कौन-कौन सा जन्म होता है?

उ. ५४०. देव, नारकियों के उपपाद जन्म ही होता है। जरायुज, अंडज, पोत (जो

योनि से निकलते ही भागने दौड़ने लग जाते हैं और जिनके ऊपर जेर वगैरह नहीं होती है। ऐसे जीवों के गर्भजन्म ही होता है। और शेष जीवों के सम्मूर्च्छनजन्म ही होता है।)

प्र. ५४१. कौन-कौन से जीवों के कौन-कौन सा लिंग होता है?

उ. ५४१. नारकी और सम्मूर्च्छन जीवों के नपुंसक लिंग होता है देवों के पुलिंग और स्त्रीलिंग और शेष जीवों के तीनों लिंग होते हैं।

प्र. ५४२. जीवसमास किसको कहते हैं?

उ. ५४२. जीवों के रहने के ठिकानों को जीवसमास कहते हैं।

प्र. ५४३. जीवसमास के कितने भेद हैं?

उ. ५४३. अट्ठानवे -तिर्यंच के **८५** मनुष्य के **९** नारकी को दो और देवों के दो।

प्र. ५४४. तिर्यंच के पचासी भेद कौन-कौन से हैं?

उ. ५४४. सम्मूर्च्छन के उनहत्तर और गर्भज के सोलह।

प्र. ५४५. सम्मूर्च्छन के उनहत्तर कौन-कौन से हैं?

उ. ५४५. एकेन्द्रिय के **४२,** विकलत्रय के **९** और पंचेन्द्रिय के **१८**।

प्र. ५४६. एकेन्द्रिय के बयालिस कौन-कौन से हैं?

उ. ५४६. पृथ्वी, अप, तेज, वायु, नित्यनिगोद, इतरनिगोद, इन छहों के बादर और सूक्ष्म की अपेक्षा से **१२** तथा सप्रतिष्ठित प्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक को मिलाने से **१४** हुए। इन चौदहों के पर्याप्तक, निर्वृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक इन तीनों की अपेक्षा से **४२** जीव समास होते हैं।

प्र. ५४७. विकलत्रय के ९ भेद कौन-कौन से हैं?

उ. ५४७. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक निर्वृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक की अपेक्षा से नौ भेद हुए।

प्र. ५४८. सम्मूर्च्छन पंचेन्द्रिय के अठारह भेद कौन-कौन से हैं?

उ. ५४८. जलचर, थलचर, नभचर इन तीनों के सैनी असैनी की अपेक्षा से **६** भेद हुए और इन छहों से पर्याप्तक, लब्ध्यपर्याप्तक की अपेक्षा से **१८** जीव समास होते हैं।

प्र. ५४९. गर्भज पंचेन्द्रिय के १६ भेद कौन-कौन से हैं?

उ. ५४९. कर्मभूमि के **१२** और भोगभूमि के **४**।

प्र. ५५०. कर्मभूमि के बारह भेद कौन-कौन से हैं?

उ. ५५०. जलचर, थलचर, नभचर इन तीनों के सैनी असैनी के भेद से छह भेद हुए और इन के पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्तक अपेक्षा **१२** भेद हुए।

प्र. ५५१. भोगभूमि के चार जीव कौन-कौन से हैं?

उ. ५५१. थलचर और नभचर इनके पर्याप्तक और निर्वृत्तयपर्याप्तक की अपेक्षा ४ भेद हुए। भोगभूमि में सैनी तिर्यच नहीं होते।

प्र. ५५२. मनुष्यों के नौ भेद कौन-कौन से हैं?

उ. ५५२. आर्यखंड म्लेच्छखंड भोगभूमि और कुभोगभूमि इन चारों गर्भजों के पर्याप्तक निर्वृत्त्यपर्याप्तक की अपेक्षा ८ हुए। इनमें सम्मूर्च्छन मनुष्य का लब्ध्यपर्याप्तक भेद मिलानें से ९ भेद होते हैं।

प्र. ५५३. नारकियों के दो भेद कौन-कौन से हैं?

उ. ५५३. पर्याप्तक और निवृत्यपर्याप्तक।

प्र. ५५४. देवों के दो भेद कौन-कौन से हैं?

उ. ५५४. पर्याप्तक और निवृित्यपर्याप्तक।

प्र. ५५५. देवों के विशेष भेद कौन-कौन से हैं?

उ. ५५५. चार हैं— भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक।

प्र. ५५६. भवनवासी देवों के कितने भेद हैं?

उ. ५५६. दश हैं— असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनित कुमार, उदधिकुमार, दीपकुमार, दिक्कुमार।

प्र. ५५७. व्यन्तरों के कितने भेद हैं?

उ. ५५७. आठ हैं-किन्नर, किंपुरूष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच।

प्र. ५५८. ज्योतिष्क देवों के कितने भेद हैं?

उ. ५५८. पांच भेद हैं— सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे।

प्र. ५५९. वैमानिक देवों के कितने भेद हैं?

उ. ५५९. दो हैं— कल्पोपपन्न और कल्पातीत।

प्र. ५६०. कल्पोपपन्न किनको कहते हैं?

उ. ५६०. जिनमें इन्द्रादिकों की कल्पना हो उनको कल्पोपपन्न कहते हैं।

प्र. ५६१. कल्पातीत किनको कहते हैं?

उ. ५६१. जिनमें इन्द्रादिक की कल्पना न हो उनको कल्पातीत कहते हैं।

प्र. ५६२. कल्पोपपन्न देवों के कितने भेद हैं?

उ. ५६२. सोलह-सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, और अच्युत।

प्र. ५६३. कल्पातीत देवों के कितने भेद हैं?

उ. ५६३. तेईस हैं-नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश, पांच पंचोत्तर (विजय, वैजयंत,

जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि)

प्र. ५६४. नारकियों के विशेष भेद कौन-कौन से हें?

उ. ५६४. पृथ्वीयों की अपेक्षा से सात भेद हैं।

प्र. ५६५. सात पृथ्वीयों के नाम क्या-क्या हैं?

उ. ५६५. रत्नप्रभा (घमां), शर्कराप्रभा (वंशा), बालुकाप्रभा (मेघा), पंकप्रभा (अंजना), धूमप्रभा (अरिष्टा), तमःप्रभा (मधवी), महातमःप्रभ (माधवी)।

प्र. ५६६. सूक्ष्म एकेन्द्रियजीवों के रहने का स्थान कहां हैं?

उ. ५६६. सर्वलोक।

प्र. ५६७. बादर एकेन्द्रियजीव कहां रहते हैं?

उ. ५६७. बादर एकेन्द्रिय जीव किसी आधार का निमित्त पाकर निवास करते हैं।

प्र. ५६८. त्रसजीव कहां रहते हैं?

उ. ५६८. त्रसजीव त्रसनाली में ही रहते हैं।

प्र. ५६९. विकलत्रय जीव कहां रहते हैं?

उ. ५६९. विकलत्रय जीव कर्मभूमि और अंत के आधे द्वीप तथा अंत के स्वयंभूरमण समुद्र में ही रहते हैं।

प्र. ५७०. पंचेन्द्रिय तिर्यंच कहाँ कहाँ रहते हैं?

उ. ५७०. तिर्यक् लोक में रहते हैं परंतु जलचर तिर्यच लवणसमुंद्र, कालोदधिसमुद्र और स्वयंभूरमण समुद्र के सिवाय अन्य समुद्रों में नहीं हैं।

प्र. ५७१. नारकी जीव कहां रहते हैं?

उ. ५७१. अधोलोक की सात पृथ्वीयों में (नरकों में) रहते हैं।

प्र. ५७२. भवनवासी और व्यन्तरदेव कहां रहते हैं?

उ. ५७२. पहिली पृथ्वी के ख्ररभाग और पंकभाग में तथा तिर्यक्-लोक में।

प्र. ५७३. ज्योतिष्क देव कहां रहते हैं?

उ. ५७३. पृथ्वी से सात सौ नब्बे योजन की ऊंचाई से लगाकर नौ सो योजन की ऊंचाई तक अर्थात् एक सौ दश योजन आकाश में एक राजू मात्र तिर्यक्लोक में ज्योतिष्क देव निवास करते हैं।

प्र. ५७४. वैमानिक देव कहां रहते हैं?

उ. ५७४. ऊर्द्धलोक में।

प्र. ५७५. मनुष्य कहां रहते हैं?

उ. ५७५. नरलोक में।

प्र. ५७६. लोक के भेद कितने हैं?

उ. ५७६. तीन हैं—ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक।

प्र. ५७७. अधोलोक किसको कहते हैं?

उ. ५७७. मेरू के नीचे सात राजू अधोलोक हैं।

प्र. ५७८. ऊर्ध्वलोक किसको कहते हैं?

उ. ५७८. मेरू के ऊपर लोक के अंतपर्यन्त ऊर्द्धलोक है।

प्र. ५७९. मध्यलोक किसको कहते हैं?

उ. ५७९. एक लाख चालीस योजन मेरू की ऊंचाई के बराबर मध्यलोक है।

प्र. ५८०. मध्यलोक का विशेष स्वरूप क्या हैं?

उ. ५८०. मध्यलोक के अत्यन्त बीच में एक लाख योजन चौड़ा, गोल (थाली की तरह) जंबूद्वीप है। जंबूद्वीप के बीच में एक लाख योजन ऊंचा सुमेरू पर्वत है। जिसका एक हजार योजन जमीन के भीतर मूल है निन्याणवे हजार योजन पृथ्वी के ऊपर है। और चालीस योजन की चूलिका (चोटी) है। जंबूद्वीप के बीच में पश्चिम पूर्व की तरफ लंबे छह कुलाचल पर्वत पड़े हुए हैं। जिनसे जंबूद्वीप के सात खंड हो गए हैं। इन सातों खंडों के नाम इस प्रकार हैं–भरत १, हैमवत २, हरि ३, विदेह ४, रम्यक ५, हैरण्यवत ६, और ऐरावत ७। विदेह क्षेत्र में मेरू से उत्तर की तरफ़ उत्तरकुरू और दक्षिण की तरफ़ देवकुरू है। जंबूद्वीप के चारों तरफ़ खाई की तरह बेढ़े हुए दो लाख योजन चौड़ा लवणसमुंद्र है। लवणसमुंद्र को चारों तरफ से बेढ़े हुए चार लाख योजन चौड़ा घातकीखण्ड द्वीप है। इस घातकीखण्ड द्वीप में दो मेरू पर्वत हैं और क्षेत्र कुलाचलादि की सब रचना जंबूद्वीप से दूनी है। घातकीखण्ड को चारों तरफ बेढ़े हुए आठ लाख योजन चौड़ा कालोदधि समुद्र है। कालोदधि समुद्र को बेढ़े सोलह लाख योजन चौड़ा पुष्करद्वीप है। पुष्करद्वीप के बीचों बीच वलय के आकार, चौड़ाई पृथ्वी पर एक हजार बाईस योजन, बीच में सात सौ तेईस योजन ऊपर चार सौ चौबीस योजन, ऊंचा सतरहसौ इकईस योजन, और जमीन के भीतर चारसौ सवातीस योजन जिसकी जड़ है ऐसा मानुषोत्तरनामा पर्वत पड़ा हुआ है, जिससे पुष्करद्वीप के दो खंड हो गये हैं। पुष्कर द्वीप के पहिले अर्द्ध भाग में जंबूद्वीप से दूनी २ अर्थात् घातकीखंड द्वीप के बराबर सब रचना है। जंबूद्वीप घातकीखंड द्वीप और पुष्करार्द्ध द्वीप तथा लवणोदधि समुद्र और कालोदधि समुद्र इतने क्षेत्र को

नरलोक कहते हैं। पुष्करद्वीप से आगे परस्पर एक दूसरे को बेढ़े हुए दूने २ विस्तार वाले मध्यलोक के अंतपर्यन्त द्वीप और समुद्र हैं। पांच मेरू सम्बंधी पांच भरत, पांच ऐरावत, देवकुरू और उत्तरकुरू को छोड़कर पांच विदेह इस प्रकार सब मिलकर **१५** कर्मभूमि हैं। पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत इन दश क्षेत्रों में जघन्य भोगभूमि हैं। पांच हरि और पांच रम्यक इन दश क्षेत्रों में मध्यम भोगभूमि हैं। और पांच देवकुरू और पांच उत्तरकुरू इन दश क्षेत्रों में उत्तम भोगभूमि हैं। जहां पर असि, मषि, कृषि, सेवा, शिल्प और वाणिज्य इन षट्कर्मो की प्रवृत्ति हो, उसको कर्मभूमि कहते हैं। जहां इनकी प्रवृत्ति न हो उसको भोगभूमि कहते हैं। मनुष्यक्षेत्र से बाहर के समस्त द्वीपों में जघन्य भोगभूमि की सी रचना है। किंतु अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीप के उत्तरार्द्ध में तथा समस्त स्वयंभूरमण समुद्र में और चारों कोनों की पृथ्वीयों में कर्मभूमि की सी रचना है। लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र में **९६** अंतर्द्वीप हैं जिनमें कुभोगभूमि की रचना हैं। वहां मनुष्य ही रहते हैं। उनमें मनुष्यों की आकृति नाना प्रकार की कुत्सित हैं।

इति चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४॥

❀ ❀ ❀

अथ पञ्चमोऽध्यायः प्रारम्भ्यते।

प्र. ५८१. संसार में समस्त प्राणी सुख को चाहते हैं और सुख ही का उपाय करते हैं परंतु सुख को प्राप्त क्यों नहीं होते?

उ. ५८१. संसारी जीव असली सुख का स्वरूप और उसका उपाय नही जानते हैं और न उसका साधन करते हैं इसलिये असली सुख को भी प्राप्त नहीं होते।

प्र. ५८२. असली सुख का क्या स्वरूप है?

उ. ५८२. आल्हादस्वरूप जीव के अनुजीवी गुण को असली सुख कहते हैं। यही जीव का खास स्वभाव है परंतु संसारी जीवों ने भ्रमवश सातावेदनीय कर्म के उदयजनित उस असली सुख की वैभाविक परिणतिरूप साता परिणाम को ही सुख मान रखा है।

प्र. ५८३. संसारी जीव को असली सुख क्यों नहीं मिलता है?

उ. ५८३. कर्मों ने उस सुख का घात रखा है इस कारण असली सुख नहीं मिलता।

प्र. ५८४. संसारी जीव को असली सुख कब मिल सकता है?

उ. ५८४. मोक्ष होने पर।

प्र. ५८५. मोक्ष का स्वरूप क्या है?

उ. ५८५. आत्मा से समस्त कर्मों के नाश को (अत्यन्त वियोग को) मोक्ष कहते हैं।

प्र. ५८६. उस मोक्ष की प्राप्ति का उपाय क्या है?

उ. ५८६. संवर और निर्जरा।

प्र. ५८७. संवर किसको कहते हैं?

उ. ५८७ आस्त्रव के निरोध को संवर कहते हैं, अर्थात् अनागत (नवीन) कर्मों का आत्मा के साथ संबंध न होने का नाम संवर है।

प्र. ५८८. निर्जरा किसको कहते हैं?

उ. ५८८. आत्मा का पूर्व से बंधे हुए कर्मों से संबंध छूटने को निर्जरा कहते हैं।

प्र. ५८९. संवर और निर्जरा होने का उपाय क्या है?

उ. ५८९. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों पूर्ण गुणों की एकता

ही संवर और निर्जरा होने का उपाय है।

प्र. ५९०. इन तीनों पूर्ण गुणों की एकता युगपत होती है या क्रम से?

उ. ५९०. क्रम से होती है।

प्र. ५९१. इन तीनों पूर्ण गुणों की एकता होने का क्रम किस प्रकार है?

उ. ५९१. जैसे जैसे गुणस्थान बढ़ते हैं वैसे ही ये गुण भी बढ़ते हुए अंत में पूर्ण होते हैं।

प्र. ५९२. गुणस्थान किसको कहते हैं?

उ. ५९२. मोह और योग के निमित्त से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्ररूप आत्मा के गुणों की तारतम्यरूप अवस्थाविशेष को गुणस्थान कहते हैं।

प्र. ५९३. गुणस्थान के कितने भेद हैं?

उ. ५९३. चौदह हैं-मिथ्यात्व १, सासादन २, मिश्र ३, अविरतसम्यग्दृष्टि ४, देशविरत ५, प्रमत्तविरत ६, अप्रमत्तविरत ७, अपूर्वकरण ८, अनिवृत्तिकरण ९, सूक्ष्मसाम्पराय १०, उपशान्तमोह ११, क्षीणमोह १२, संयोगकेवली १३, अयोगकेवली १४।

प्र. ५९४. गुणस्थानों के ये नाम होने के कारण क्या है?

उ. ५९४. मोहनीय कर्म और योग।

प्र. ५९५. कौन-कौन से गुणस्थान का क्या-क्या निमित्त है?

उ. ५९५. आदि के चार गुणस्थान तो दर्शनमोहनीय कर्म के निमित्त से हैं। पांचवें गुणस्थान से लगाकर बारहवें गुणस्थान पर्यन्त आठ गुणस्थान चारित्रमोहनीय के निमित्त से हैं। और तेरहवां और चौदहवां ये दो गुणस्थान योगों के निमित्त से होते हैं। **भावार्थ-** पहिला गुणस्थान दर्शनमोहनीय के उदय से होता है। इसमें आत्मा के परिणाम मिथ्यात्वरूप होते हैं। चौथा गुणस्थान दर्शनमोहनीय कर्म के उपशम, क्षय, अथवा क्षयोपशम से होता है। इस गुणस्थान में आत्मा के सम्यग्दर्शन गुण का प्रादुर्भाव हो जाता है। तीसरा गुणस्थान सम्यकमिथ्यात्व रूप दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से होता है। इस गुणस्थान में आत्मा के परिणाम सम्यकमिथ्यात्व रूप अर्थात् उभयरूप होते हैं। पहिले गुणस्थान में औदयिक भाव चौथे गुणस्थान में औपशमिक, क्षायिक अथवा क्षायोपशमिक भाव और तीसरे गुणस्थान में औदयिक भाव होते हैं। परंतु दूसरा गुणस्थान दर्शनमोहनीय कर्म की उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम इन चार अवस्थाओं में से किसी भी अवस्था की अपेक्षा नहीं रखता है इसलिए यहां पर दर्शनमोहनीय कर्म की अपेक्षा से

पारिणामिक भाव हैं किन्तु अनतानुबंधीरूप चारित्रमोहनीय कर्म का उदय होने से इस गुणस्थान में चारित्रमोहनीय कर्म की अपेक्षा से औदयिक भाव भी कहे जा सकते हैं। इस गुणस्थान में अनंतानुबंधी के उदय से सम्यक्त्व का घात हो गया है इसलिये यहां सम्यक्त्व नहीं है और मिथ्यात्व का भी उदय नहीं आया है इसलिए मिथ्यात्व परिणाम भी नहीं है। अतएव यह गुणस्थान मिथ्यात्व और सम्यक्त्व की अपेक्षा से अनुदयरूप है। पांचवें गुणस्थान से दशवें गुणस्थान तक छह गुणस्थान चारित्रमोहनीय कर्म के क्षयोपशम से होते हैं इसलिए इन गुणस्थानों में क्षायोपशमिक भाव होते हैं। इन गुणस्थानों में सम्यक्‌चारित्र गुण की क्रम से वृद्धि होती जाती है। ग्यारहवां गुणस्थान चारित्रमोहनीय कर्म के उपशम से होता है इसलिए ग्यारहवें गुणस्थान में औपशमिक भाव होते हैं। यद्यपि यहां पर चारित्रमोहनीय कर्म का पूर्णतया उपशम हो गया है तथापि योग का सद्‌भाव होने से पूर्णचारित्र नहीं है– क्योंकि सम्यक्‌चारित्र के लक्षण में योग और कषाय के अभाव से सम्यक्‌चारित्र होता है ऐसा लिखा है। बारहवां गुणस्थान चारित्रमोहनीय कर्म के क्षय से होता है इसलिये यहां क्षायिक भाव होते हैं। इस गुणस्थान में भी ग्यारहवें गुणस्थान की तरह सम्यक्‌चारित्र की पूर्णता नहीं है– सम्यग्ज्ञानगुण यद्यपि चौथे गुणस्थान में ही प्रगट हो चुका था। **भावार्थ–** यद्यपि आत्मा का ज्ञानगुण अनादिकाल से प्रवाहरूप चल आ रहा है तथापि दर्शनमोहनीय का उदय होने से वह ज्ञान मिथ्यारूप था परन्तु चौथे गुणस्थान में जब दर्शनमोहनीय कर्म के उदय का अभाव हो गया तब वही आत्मा का ज्ञानगुण सम्यग्ज्ञान कहलाने लगा। और पंचमादि गुणस्थानों में तपश्चरणादि के निमित्त से अवधि, मन:पर्यय ज्ञान भी किसी २ जीव के प्रगट हो जाते हैं तथापि केवलज्ञान के हुए बिना सम्यग्ज्ञान की पूर्णता नहीं हो सकती इसलिये इस बारहवें गुणस्थान तक यद्यपि सम्यग्दर्शन की पूर्णता हो गई है (क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व के बिना क्षपकश्रेणी नहीं चढ़ता और क्षपकश्रेणी के बिना १२ वाँ गुणस्थान नहीं होता) तथापि सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र गुण अभी तक अपूर्ण हैं इसीलिए अभी तक मोक्ष नहीं होता। तेरहवां गुणस्थान योगों के सद्‌भाव की अपेक्षा से होता है इसीलिए इसका नाम सयोगकेवली है। इस गुणस्थान में सम्यग्ज्ञान की पूर्णता हो जाती है परन्तु चारित्र गुण की पूर्णता न होने से मोक्ष नहीं होती। चौदहवां गुणस्थान योगों के अभाव

की अपेक्षा है इसलिए इसका नाम अयोगकेवली है। इस गुणस्थान में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों गुणों की पूर्णता हो जाती है अतएव मोक्ष भी अब दूर नहीं रही। अर्थात् अ इ उ ऋ लृ इन पांच हस्व स्वरों के उच्चारण करने में जितना काल लगता है उतने ही काल में मोक्ष हो जाता है।

प्र. ५९६. मिथ्यात्वगुणस्थान का क्या स्वरूप है?

उ. ५९६. मिथ्यात्वप्रकृति के उदय से अतत्त्वार्थश्रद्धानरूप आत्मा के परिणाम विशेष को मिथ्यात्वगुणस्थान कहते हैं। इस मिथ्यात्व गुणस्थान में रहने वाला जीव विपरीत श्रद्धान करता है और सच्चे धर्म की तरफ इसकी रूचि नहीं होती। जैसे पित्तज्वरवाले रोगी को दुग्धादिक रस कड़वे लगते हैं उसी प्रकार इसको भी समीचीन धर्म अच्छा नहीं लगता।

प्र. ५९७. मिथ्यात्वगुणस्थान में किन-किन प्रकृतियों का बंध होता है?

उ. ५९७. कर्म की **१४८** प्रकृतियों में से स्पर्शादिक **२०** प्रकृतियों का अभेद विवक्षा से स्पर्शादिक चार में और बंधन **५** और संघात **५** का अभेद विवक्षा से पांच शरीरों में अन्तर्भाव होता है। इस कारण भेदविवक्षा से सर्व **१४८** और अभेदविवक्षा से **१२२** प्रकृति हैं। और सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति इन दो प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता है। क्योंकि इन दोनों प्रकृतियों की सत्ता सम्यक्त्वपरिणामों से मिथ्यात्वप्रकृति के तीन खंड करने से होती है इस कारण अनादि मिथ्यादृष्टि जीव की बन्धयोग्य प्रकृति **१२०** और सत्त्वयोग्य प्रकृति **१४६** हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थंकरप्रकृति, आहारकशरीर और आहारकआंगोपांग इन तीन प्रकृतियों का बंध नहीं होता है। क्योंकि इन तीन प्रकृतियों का बंध सम्यग्दृष्टियों के ही होता है इसलिए इस गुणस्थान में एक सौ बीस में से तीन घटाने पर **११७** प्रकृतियों बंध होता है।

प्र. ५९८. मिथ्यात्व गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ५९८. सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, आहारकशरीर, आहारकआंगोपांग और तीर्थंकरप्रकृति इन पांच प्रकृतियों का इस गुणस्थान में उदय नहीं होता इसलिए **१२२** में से पांच घटाने पर **११७** का उदय होता है।

प्र. ५९९. मिथ्यात्वगुणस्थान में सत्त्व (सत्ता) कितनी प्रकृतियों का रहता है?

उ. ५९९. एक सौ अड़तालीस प्रकृतियों का।

प्र. ६००. सासादनगुणस्थान किसको कहते हैं?

उ. ६००. प्रथमोपशमसम्यक्त्व के काल में जब ज्यादा से ज्यादा **६** आवली और कमतीसे कमती **१** समय बाकी रहे उस समय किसी एक अनंतानुबंधी कषाय के उदय से नाश हो गया है सम्यक्त्व जिसके ऐसा जीव सासादनगुणस्थान वाला होता है।

प्र. ६०१. प्रथमोउपशम सम्यक्त्व किसको कहते हैं?

उ. ६०१. सम्यक्त्व के तीन भेद हैं—दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृति और अनन्तानुबंधी की **४** प्रकृति इस प्रकार इन सात प्रकृतियों के उपशम होने से जो उत्पन्न हो उसको उपशमसम्यक्त्व कहते हैं और इन सातों के क्षय होने से जो उत्पन्न हो उसको क्षायिकसम्यक्त्व कहते हैं और **६** प्रकृतियों के अनुदय और सम्यक्प्रकृति नामक मिथ्यात्व के उदय से जो हो, उसको क्षायोपशमिकसम्यक्त्व कहते हैं। उपशमसम्यक्त्व के दो भेद हैं—एक प्रथमोपशमसम्यक्त्व और दूसरा द्वितीयोपशमसम्यक्त्व। अनादिमिथ्यादृष्टि के पांच और सादिमिथ्यिादृष्टि के सात प्रकृतियों के उपशम से हो, उसको प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहते हैं।

प्र. ६०२. द्वितीयोपशमसम्यक्त्व किसको कहते हैं?

उ. ६०२. सातवें गुणस्थान में क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव श्रेणी चढ़ने के सन्मुख अवस्था में अनंतानुबंधी चतुष्टय का विसंयोजन (अप्रत्याख्यानादिरूप) करके दर्शनमोहनीय की तीनों प्रकृतियों का उपशम करके जो सम्यक्त्व प्राप्त करता है उसको द्वितीयोपशमसम्यक्त्व कहते हैं।

प्र. ६०३. आवली किसको कहते हैं?

उ. ६०३. असंख्यात समय की एक आवली होती है।

प्र. ६०४. सासादनगुणास्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है?

उ. ६०४. पहिले गुणस्थान में जो **११७** प्रकृतियों का बंध होता है उनमें से मिथ्यात्वगुणस्थान में जिनकी व्युच्छिति है ऐसी सोलह प्रकृतियों के घटाने पर **१०१** प्रकृतियों का बंध सासादन में होता है। वे सोलह प्रकृति ये हैं—मिथ्यात्व, हुंडकसंस्थान, नपुंसकवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय जाति, विकलत्रय तीन, स्थावर, आताप, सूक्ष्म अपर्याप्त और साधारण।

प्र. ६०५. व्युच्छित्ति किसको कहते हैं?

उ. ६०५. जिस गुणस्थान में कर्मप्रकृतियों के बंध, उदय अथवा सत्त्व की व्युच्छित्ति कही हो उस गुणस्थान तक ही उन प्रकृतियों का बंध, उदय अथवा सत्त्व

पाया जाता है। आगे के किसी भी गुणस्थान में उन प्रकृतियों का बंध, उदय अथवा सत्त्व नहीं होता है। इसी को व्युच्छित्ति कहते हैं।

प्र. ६०६. सासादनगुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६०६. पहिले गुणस्थान में जो **११७** प्रकृतियों का उदय होता है उनमें से मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन पांच मिथ्यात्व, गुणस्थान की व्युच्छिन प्रकृतियों को घटाने पर **११२** रहीं। परन्तु नरकगत्यानुपूर्वी का इस गुणस्थान में उदय नहीं होता इसलिए इस गुणस्थान में **१११** प्रकृतियों का उदय होता है।

प्र. ६०७. सासादन गुणस्थान में सत्त्व कितनी प्रकृतियों का रहता है?

उ. ६०७. एक सौ पैंतालीस प्रकृतियों का सत्त्व रहता है। यहाँ पर तीर्थंकर प्रकृति, आहारकशरीर और आहारक अंगोपांग इन तीनों प्रकृतियों की सत्ता नहीं रहती।

प्र. ६०८. तीसरा मिश्र गुणस्थान किसको कहते हैं?

उ. ६०८. सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से जीव के न तो केवल सम्यक्त्व परिणाम होते और न केवल मिथ्यात्वरूप परिणाम होते किन्तु मिले हुए दही-गुड़ के स्वाद की तरह एक भिन्न जाति के मिश्र परिणाम होते हैं। इसी को मिश्र गुणस्थान कहते हैं।

प्र. ६०९. मिश्र गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है?

उ. ६०९. दूसरे गुणस्थान में बंधप्रकृति **१०१** थीं। उनमें से व्युच्छिन्नप्रकृति पच्चीस को (अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोधसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान, वज्रनाराचसंहनन, नाराचसंहनन, अर्द्धनाराचसंहनन, कीलितसंहनन, अप्रशस्तविहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यगायुः उद्योत को) घटाने पर शेष रहीं **७६**। परन्तु इस गुणस्थान में किसी भी आयुकर्म का बंध नहीं होता है, इसीलिए छिहत्तर में से मनुष्यायु और देवायु इन दो के घटाने पर **७४** प्रकृतियों का बंध होता है। नरकायु की तो पहिले गुणस्थान में और तिर्यगायु की दूसरे गुणस्थान में ही व्युच्छित्ति हो चुकी है।

प्र. ६१०. मिश्र गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उदय होता है?

उ. ६१०. दूसरे गुणस्थान में **१११** प्रकृतियों का उदय होता है उनमें से व्युच्छिन्नि प्रकृति **९** के (अनंतानुबंधी **४** एकेन्द्रियादिक **४** स्थावर **१** के) घटाने पर

शेष रहीं **१०२** में से नरकगत्यानुपूर्वी के बिना शेष की तीन आनुपूर्वी घटाने पर (क्योंकि तीसरे गुणस्थान में मरण न होने से किसी भी आनुपूर्वी का उदय नहीं है) शेष रहीं **९९** प्रकृति और एक सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति का उदय यहाँ आ मिला, इस कारण इस गुणस्थान में **१००** प्रकृतियों का उदय होता है।

प्र. ६११. मिश्र गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सत्त्व रहता है?

उ. ६११. तीर्थंकर प्रकृति के बिना **१४७** प्रकृतियों का सत्त्व रहता है।

प्र. ६१२. चौथे अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान का क्या स्वरूप है?

उ. ६१२. दर्शनमोहनीय तीन और अनंतानुबंधी की चार इन सात प्रकृतियों के उपशम अथवा क्षय अथवा क्षयोपशम से और अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ के उदय से व्रतरहित सम्यक्त्वधारी चौथे गुणस्थानवर्त्ती होता है।

प्र. ६१३. इस चौथे गुणस्थान में बंध कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६१३. तीसरे गुण स्थान में **७४** प्रकृतियों का बंध होता है जिनमें मनुष्यायु, देवायु और तीर्थंकर प्रकृति इन तीन सहित **७७** प्रकृतियों का बंध यहाँ होता है।

प्र. ६१४. चौथे गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६१४. तीसरे गुणस्थान में **१००** प्रकृतियों का उदय होता है उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व के घटाने पर रही **९९**, इनमें चार आनुपूर्वी और एक सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व इन पाँच प्रकृतियों को मिलाने पर **१०४** प्रकृतियों का उदय होता है।

प्र. ६१५. चौथे गुणस्थान में सत्त्व कितनी प्रकृतियों का रहता है?

उ. ६१५. सबका अर्थात् **१४८** प्रकृतियों का। किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टि के **१४१** का ही सत्त्व है।

प्र. ६१६. देशविरतनामक पांचवे गुणस्थान का क्या स्वरूप है?

उ. ६१६. प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ के उदय से यद्यपि संयमभाव नहीं होता तथापि अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ के उपशम से श्रावकव्रतरूप देशचारित्र होता है। इसही को देश विरतनामक पांचवां गुणस्थान कहते हैं। पांचवे आदि ऊपर के समस्त गुणस्थानों में सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन का अविनाभावी सयम्यग्ज्ञान अवश्य होता है। इसके बिना पांचवे छठे आदि गुणस्थान नहीं होते।

प्र. ६१७. पांचवे गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है?

उ. ६१७. चौथे गुणस्थान जो ७७ प्रकृतियों का बंध कहा है उनमें से व्युच्छिन्न दश के (अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभनाराचसंहनन के) घटाने पर शेष रहीं **६७** प्रकृतियों का बंध होता है।

प्र. ६१८. पांचवे गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६१८. चौथे गुणस्थान में जो **१०४** प्रकृतियों का उदय कहा है उनमें से व्युच्छिन्नप्रकृति सत्तरह के (अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति के) घटाने पर शेष रहीं ८७ प्रकृतियों का उदय है।

प्र. ६१९. पांचवे गुणस्थान में सत्त्व कितनी प्रकृतियों का रहता हैं?

उ. ६१९. चौथे गुणस्थान में जो **१४८** का सत्त्व रहना कहा है उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति एक नरकायु के बिना **१४७** का सत्त्व रहता है। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से **१४०** का ही सत्त्व रहता है।

प्र. ६२०. छट्ठे प्रमत्तविरत नामक गुणस्थान का स्वरूप क्या है?

उ. ६२०. संज्वलन और नोकषाय के तीव्र उदय से संयमभाव तथा मल जनक प्रमाद ये दोनों ही युगपत् होते हैं। (यद्यपि संज्वलन और नोकषाय का उदय चारित्रगुण का विरोधी है तथापि प्रत्याख्यानावरण कषाय का उपशम होने से प्रादुर्भूत सकल संयम के घातने में समर्थ नहीं है इस कारण उपचार से संयम का उत्पादक कहा है) इसलिए इस गुणस्थानवर्ती मुनि को प्रमत्तविरत अर्थात् चित्रलाचरणी कहते हैं।

प्र. ६२१. छट्ठे गुणस्थान में बंध कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६२१. पांचवे गुणस्थान में जो **६७** प्रकृतियों का बंध होता है उनमें से प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ इन **४** व्युच्छिन्न प्रकृतियों के घटाने पर शेष रहीं **६३** प्रकृतियों का बंध होता है।

प्र. ६२२. छट्ठे गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६२२. पांचवे गुणस्थान में ८७ प्रकृतियों का उदय कहा है उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति आठ के (प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, तिर्यग्गति,

तिर्यगायु, उद्योत और नीचगोत्र के)घटाने पर शेष रहीं **७९** प्रकृतियों में आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग ये दो प्रकृति मिलाने से **८१** प्रकृतियों का उदय होता है।

प्र. ६२३. छट्ठे गुणास्थान में सत्त्व कितनी प्रकृतियों का है?

उ. ६२३. पांचवे गुणस्थान में **१४७** प्रकृतियों की सत्ता कहीं है उनमें से व्युच्छिन्न प्रकृति एक तिर्यगायु के घटाने पर **१४६** प्रकृतियों का सत्त्व रहता है। किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टि के **१३९** का ही सत्त्व है।

प्र. ६२४. अप्रमत्तविरत नाम के सातवें गुणस्थान का स्वरूप क्या है?

उ. ६२४. संज्वलन और नोकषाय के मंद उदय होने से प्रमाद रहित संयमभाव होते हैं इस कारण इस गुणस्थानवर्त्ती मुनि को अप्रमत्तविरत कहते हैं।

प्र. ६२५. अप्रमत्तगुणस्थान के कितने भेद हैं?

उ. ६२५. दो हैं—स्वस्थान अप्रमत्तविरत और सातिशय अप्रमत्तविरत।

प्र. ६२६. स्वस्थान अप्रमत्तविरत किसे कहते हैं?

उ. ६२६. जो हजारों बार छट्ठे से सातवें में और सातवें से छट्ठे गुणस्थान में आवे-जावे, उसको स्वस्थान अप्रमत्त कहते हैं।

प्र. ६२७. सातिशय अप्रमत्तविरत किसको कहते हैं?

उ. ६२७. जो श्रेणी चढ़ने के सम्मुख हो उसको सातिशय अप्रमत्तविरत कहते हैं।

प्र. ६२८. श्रेणी चढ़ने का पात्र कौन है?

उ. ६२८. क्षायिकसम्यग्दृष्टि और द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि ही श्रेणी चढ़ते हैं। प्रथमोपशमसम्यक्त्व वाला तथा क्षायोपशमिकसम्यक्त्व वाला श्रेणी नहीं चढ़ सकता है। प्रथमोपशमसम्यक्त्व वाला प्रथमोपशमसम्यक्त्व को छोड़कर क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होकर प्रथम ही अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ का विसंयोजन करके दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों का उपशम करके या तो द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि हो जाए अथवा तीनों प्रकृतियों का क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाए तब श्रेणी चढ़ने का पात्र होता है।

प्र. ६२९. श्रेणी किसको कहते हैं?

उ. ६२९. जहाँ चारित्रमोहनीय की शेष रहीं इक्कीस प्रकृतियों का क्रम से उपशम तथा क्षय किया जाए, उसको श्रेणी कहते हैं।

प्र. ६३०. श्रेणी के कितने भेद हैं?

उ. ६३०. दो—उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी।

प्र. ६३१. उपशमश्रेणी किसे कहते हैं?

उ. ६३१. जिसमें चारित्रमोहनीय की **२१** प्रकृतियों का उपशम किया जाए।

प्र. ६३२. क्षपक श्रेणी किसको कहते हैं?

उ. ६३२. जिसमें उक्त **२१** प्रकृतियों का क्षय किया जाए।

प्र. ६३३. इन दोनों श्रेणियों में कौन-कौन से जीव चढ़ते हैं?

उ. ६३३. क्षायिक सम्यग्दृष्टि तो दोनों ही श्रेणी चढ़ता है और द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणी ही चढ़ता है, क्षपकश्रेणी नहीं चढ़ता।

प्र. ६३४. उपशमश्रेणी के कौन-कौन से गुणस्थान हैं?

उ. ६३४. चार हैं—आठवां, नवमां, दशवां, ग्यारहवां।

प्र. ६३५. क्षपकश्रेणी के कौन-कौन से गुणस्थान हैं?

उ. ६३५. आठवां, नवमां, दशमां, बारहवां ये चार हैं।

प्र. ६३६. चारित्रमोहनीय की २१ प्रकृतियों के उपशमावने तथा क्षय करने के लिए आत्मा के कौन से परिणाम निमित्तकारण हैं?

उ. ६३६. तीन हैं—अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण।

प्र. ६३७. अधःकरण किसको कहते हैं?

उ. ६३७. जिस करण में (परिणाम समूह में) उपरितनसमयवर्त्ती तथा अधस्तनसमयवर्त्ती जीवों के परिणाम सदृश तथा विसदृश हों उसको अधःकरण कहते हैं। यह अधःकरण सातवें गुणस्थान में होता है।

प्र. ६३८. अपूर्वकरण किसको कहते हैं?

उ. ६३८. जिस करण में उत्तरोत्तर अपूर्व ही अपूर्व परिणाम होते जाएँ अर्थात् भिन्न समयवर्त्ती जीवों के परिणाम सदा विसदृश ही हों और एक समयवर्त्ती जीवों के परिणाम सदृश भी हों और विसदृश भी हों उसको अपूर्वकरण कहते हैं और यही आठवां गुणस्थान है।

प्र. ६३९. अनिवृत्तिकरण किसको कहते हैं?

उ. ६३९. जिस करण में भिन्नसमयवर्त्ती जीवों के परिणाम विसदृश ही हों और एक समयवर्त्ती जीवों के परिणाम सदृश ही हों उसको अनिवृतिकरण कहते हैं। यही नवमां गुणस्थान है। इन तीनों ही करणों के परिणाम प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धता लिए होते हैं।

प्र. ६४०. अधःकरण का दृष्टान्त क्या है?

उ. ६४०. देवदत्त नामक राजा के **३०७२** तीन हजार बहत्तर आदमी (जो कि **१६** महकमों में बँटे हुए हैं) सेवक हैं। महकमा नं. **१** में **१६२** हैं। नं. **२** में **१६६**। नं. **३** में **१७०**। नं. **४** में **१७४**। नं. **५** में **१७८**। नं. **६** में **१८२**।

नं. ७ में **१८६** । नं. ८ में **१९०** । नं. ९ में **१९४** । नं. **१०** में **१९८** । नं. **११** में **२०२** । नं. **१२** में **२०६** । नं. **१३** में **२१०** । नं. **१४** में **२१४** । नं. **१५** में **२१८**और नं. **१६** में **२२२** आदमी काम करते हैं। पहिले महकमें में **१६२** आदमियों से पहिले आदमी का वेतन **१)** रुपया, दूसरे का **२**) तीसरे का **३**) रुपया इसी प्रकार एक-एक बढ़ते हुए **१६२**वें आदमी का वेतन **१६२** रुपया है। और महकमें नं. **२** में जो **१६६**आदमी काम करते हैं उनमें से पहिले आदमी का वेतन **४०** रुपया है। द्वितीयादिक का एक-एक रुपया वेतन क्रम से बढ़ता हुआ होने से **१६६** वें आदमी का वेतन **२०५**) रुपया है। और महकमें नं. **३** में **१७०** आदमी काम करते हैं सो इनमें से पहिले आदमी का वेतन **८०**) रुपया है और दूसरे, तीसरे आदमियों का एक-एक रुपया बढ़ते बढ़ते **१७०** वे आदमी का वेतन **२४९**) रुपया है। महकमें नं. **४** में **१७४** आदमी काम करते हैं सो पहिले आदमी का वेतन होने से **१२१**) रुपया है और दूसरे आदमी का एक-एक रुपया बढ़ता हुआ वेतन होने से **१७४** वें आदमी का वेतन **२९४**) रुपया होता है। इसी क्रम से महकमें नं. **१६** वें महकमें में जो **२२२** आदमी नौकर हैं उनमें से पहिले का वेतन **६९१**) रुपया और **२२२** वें आदमी का वेतन **९१२** रुपया है। इस दृष्टांत में पहिले महकमें के **३९** आदमियों का वेतन ऊपर के महकमें के किसी भी आदमी के वेतन से नहीं मिलता तथा आखिर के **५७** आदमियों का वेतन नीचे के महकमों के किसी भी आदमी के वेतन से नहीं मिलता है। शेष वेतन ऊपर नीचे के महकमों के वेतनों के साथ यथासम्भव सदृश भी है। इसी प्रकार यथार्थ में भी ऊपर के समयसम्बन्धी परिणामों और नीचे के समयसम्बन्धी परिणामों में सदृशता यथा सम्भव जाननी। इसका विशेष स्वरूप गोमट्टसारजी के गुणस्थानाधिकार में तथा छपे हुए सुशीला उपन्यास के **२४७** वें पृष्ठ से लगातार **२६३** वें पृष्ठ तक में देखना।

प्र. ६४१. सातवें गुणस्थान में बंध कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६४१. छट्ठे गुणस्थान में जो **६३** प्रकृतियों का बंध कहा है; उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति छहके (अस्थिर, अशुभ, असाता, अयशस्कीर्ति, अरति, शोक के) घटाने पर शेष रही **५७** में आहारकशरीर और आहारकअंगोपांग इन दो प्रकृतियों को मिलाने से **५९** प्रकृतियों का बंध होता है।

प्र. ६४२. सातवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६४२. छट्ठे गुणस्थान में जो **८१** प्रकृतियों का उदय कहा है, उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति पांच के (आहारकशरीर, आहारक अंगोपांग, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, और स्त्यानगृद्धि के) घटाने पर शेष रहीं **७६** प्रकृतियों का उदय होता है।

प्र. ६४३. सातवें गुणस्थान में सत्त्व कितनी प्रकृतियों का रहता है?

उ. ६४३. छट्ठे गुणस्थान की तरह इस गुणस्थान में भी **१४६** की सत्ता रहती है किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टि के **१३९** का ही सत्त्व रहता है।

प्र. ६४४. आठवें गुणस्थान में बंध कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६४४. सातवें गुणस्थान में जो **५९** प्रकृतियों का बंध कहा है; उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति एक देवायु को घटाने पर **५८** का बंध होता है।

प्र. ६४५. आठवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६४५. सातवें गुणस्थान में जो **७६** प्रकृतियों का उदय कहा है; उनमें व्युच्छित्ति प्रकृति चार के (सम्यक्प्रकृति, अर्द्धनाराच, कीलक असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन के)घटाने पर शेष **७२** प्रकृतियों का उदय होता है।

प्र. ६४६. आठवें गुणस्थान में सत्त्व कितनी प्रकृतियों का है?

उ. ६४६. सातवें गुणस्थान में जो **१४६** का सत्त्व कहा है; उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार को घटाकर द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणी वाले के तो **१४२** का सत्त्व है किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणी वाले के दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृति रहित **१३९** का सत्त्व रहता है। और क्षपकश्रेणी वाले के सातवें गुणस्थान की व्युच्छित्ति प्रकृति आठ को (अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा दर्शनमोहनीय की **३** और एक देवायु को) घटाकर शेष **१३८** प्रकृतियों का सत्त्व रहता है।

प्र. ६४७. नववें अर्थात् अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में बंध कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६४७. आठवें गुणस्थान में जो **५८** प्रकृतियों का बंध कहा है; उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति छत्तीस को (निद्रा, प्रचला, तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रियजाति, तैजसशरीर, कार्माणशरीर, आहारकशरीर, आहारकअंगोपांग, समचतुरस्त्रसंस्थान, वैक्रयिकशरीर, वैक्रियिकअंगोपांग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गंध, स्पर्श, अगुरुलघुत्व, उपघात, परघात, उच्छवास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय,

हास्य, रति, जुगुप्सा, भय को) घटाने पर शेष रहीं **२२** प्रकृतियों का बंध होता है।

प्र. ६४८. नववें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६४८. आठवें गुणस्थान में जो **७२** प्रकृतियों का उदय होता है; उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति छह को (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा को)घटा देने पर शेष रहीं **६६** प्रकृतियों का उदय होता है।

प्र. ६४९. नववें गुणस्थान में सत्त्व कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६४९. आठवें गुणस्थान की तरह इस गुणस्थान में भी उपशमश्रेणी वाले द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि के **१४२**, क्षायिकसम्यग्दृष्टि के **१३९** और क्षपकश्रेणी वाले के **१३८** प्रकृतियों का ही सत्त्व रहता है।

प्र. ६५०. दशवें सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान का स्वरूप क्या है?

उ. ६५०. अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त लोभ कषाय के उदय को अनुभवन करते हुए जीव के सूक्ष्मसाम्पराय नाम का दशवां गुणस्थान होता है।

प्र. ६५१. दशवें गुणस्थान में बंध कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६५१. नववें गुणस्थान में जो **२२** प्रकृतियों का बंध होता है; उनमें से व्युच्छित्तिप्रकृति पांच को (पुरुषवेद, संज्वलनक्रोध, मान, माया, लोभ को) घटाकर शेष रहीं **१७** प्रकृतियों का बंध होता है।

प्र. ६५२. दशवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६५२. नववें गुणस्थान में जो **६६** प्रकृतियों का उदय होता है; उनमें से व्युच्छित्तिप्रकृति छह को (स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, संज्वलनक्रोध, मान, माया को) घटा देने पर शेष रहीं **६०** प्रकृतियों का उदय होता है।

प्र. ६५३. दशवें गुणस्थान में सत्त्व कितनी प्रकृतियों का रहता है?

उ. ६५३. उपशमश्रेणी में तो नववें की तरह द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि के **१४२** और क्षायिक सम्यग्दृष्टि के **१३८** और क्षपक श्रेणी वाले के नववें गुणस्थान में जो **१३** प्रकृतियों का सत्त्व है, उनमें से व्युच्छित्तिप्रकृति छत्तीस को (तिर्यग्गति **१**, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी **१**, विकलत्रय की **३**, निद्रानिद्रा **१**, प्रचलाप्रचला **१**, स्त्यानगृद्धि **१**, उद्योत **१**, आतप **१**, एकेन्द्रिय **१**, साधारण **१**, सूक्ष्म **१**, स्थावर **१**, अप्रत्याख्यानावरण की **४**, प्रत्याख्यानावरण की **४**, नोकषाय की **९**, संज्वलन क्रोध **१**, मान **१**, माया **१**, नरकगति **१**, नरकगत्यानुपूर्वी **१**, को) घटा देने पर शेष रहीं **१०२** प्रकृतियों का सत्त्व है।

प्र. ६५४. ग्यारहवें उपशान्तमोह नामक गुणस्थान का स्वरूप क्या है?

उ. ६५४. चारित्रमोहनीय की **२१** प्रकृतियों के उपशम होने से यथाख्यात चारित्र को धारण करने वाले मुनि के ग्यारहवां उपशान्तमोह नाम का गुणस्थान होता है। इस गुणस्थान का काल समाप्त होने पर मोहनीय सम्यक् प्रकृति के उदय से जीव नीचले गुणस्थानों में आ जाता है।

प्र. ६५५. ग्यारहवें गुणस्थान में बंध कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६५५. दशवें गुणस्थान में जो **१७** प्रकृतियों का बंध होता था; उनमें से व्युच्छित्तिप्रकृति **१६** अर्थात् ज्ञानावरण की **५,** दर्शनावरण की **४,** अंतराय की **५,** यश:कीर्त्ति **१,** उच्चगोत्र **१** इन सबको घटा देने पर शेष रही एक मात्र सातावेदनीय का बंध होता है।

प्र. ६५६. ग्यारहवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६५६. दशवें गुणस्थान में जो **६०** प्रकृतियों का उदय होता है; उनमें से व्युच्छित्तिप्रकृति एक संज्वलन लोभ को घटा देने पर शेष रहीं **५९** प्रकृतियों का उदय होता है।

प्र. ६५७. ग्यारहवें गुणस्थान में सत्त्व कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६५७. नववें और दशवें गुणस्थान की तरह द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि के **१४२** और क्षायिकसम्यग्दृष्टि के **१३९** का सत्त्व रहता है।

प्र. ६५८. क्षीणमोह नामक बारहवें गुणस्थान का स्वरूप क्या है और वह किसके होता है?

उ. ६५८. मोहनीय कर्म के अत्यन्त क्षय होने से स्फटिकभाजनगत जल की तरह अत्यन्त निर्मल अविनाशी यथाख्यात चारित्र के धारक मुनि के क्षीणमोह गुणस्थान होता है।

प्र. ६५९. बारहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है?

उ. ६५९. एक साता वेदनी मात्र का बंध होता है।

प्र. ६६०. बारहवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६६०. ग्यारहवें गुणस्थान में जो **५९** प्रकृतियों का उदय होता है; उनमें से वज्रनाराच और नाराच इन दो व्युच्छित्ति प्रकृतियों को घटा देने पर **५७** प्रकृतियों का उदय होता है।

प्र. ६६१. बारहवें गुणस्थान में सत्त्व कितनी प्रकृतियों का रहता है?

उ. ६६१. दशवें गुणस्थान में क्षपकश्रेणी वाले की अपेक्षा **१०२** प्रकृतियों का सत्त्व है; उनमें से व्युच्छित्तिप्रकृति संज्वलन लोभ को घटा देने पर शेष रहीं

१०१ प्रकृतियों का सत्त्व रहता है।

प्र. ६६२. सयोगकेवली नामक तेरहवें गुणस्थान का स्वरूप क्या है और वह किसके होता है?

उ. ६६२. घातिया कर्मों की ४७ (देखो प्रश्न नं ३४८ में) और अघातिया कर्मों की १६ (नरक तिर्यग्गति २, तदानुपूर्वी २, विकलत्रय ३, आयुस्त्रिक ३, उद्योत १, आतप १, एकेन्द्रिय १, साधारण १, सूक्ष्म १ और स्थावर १) मिलाकर ६३ प्रकृतियों का क्षय होने से लोकालोकप्रकाशक केवलज्ञान तथा मनोयोग, वचनयोग और काययोग के धारक अरहंत भट्टारक के सयोगकेवली नामक तेरहवां गुणस्थान होता है। यही केवली भगवान अपनी दिव्य ध्वनि से भव्य जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देकर संसार में मोक्षमार्ग का प्रकाश करते हैं।

प्र. ६६३. तेरहवें गुणस्थान में बंध कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६६३. एकमात्र सातावेदनी का बंध होता है।

प्र. ६६४. तेरहवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६६४. बारहवें गुणस्थान में जो सत्तावन प्रकृतियों का उदय होता है; उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति सोलह को (ज्ञानावरण की ५, अंतराय की ५, दर्शनावरण की ४, निद्रा और प्रचला को) घटा देने पर शेष रहीं ४१ प्रकृतियों में तीर्थंकर की अपेक्षा से एक तीर्थंकरप्रकृति को मिलाकर ४२ प्रकृतियों का उदय होता है।

प्र. ६६५. तेरहवें गुणस्थान में सत्त्व कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६६५. बारहवें गुणस्थान में जो १०१ प्रकृतियों का सत्त्व है; उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति सोलह को (ज्ञानावरण की ५, अंतराय की ५, दर्शनावरण की ४, निद्रा १, और प्रचला १ को) घटा देने पर शेष ८५ प्रकृतियों का सत्त्व रहता है।

प्र. ६६६. अयोग केवली नामक चौदहवें गुणस्थान का स्वरूप क्या है और वह किसके होता है?

उ. ६६६. मनवचनकाय के योगों से रहित केवलज्ञानसहित अरहंत भट्टारक के चौदहवां गुणस्थान होता है। इस गुणस्थान का काल अ इ उ ऋ लृ इन पांच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण करने के बराबर है। अपने गुणस्थान के काल के द्विचरम समय में सत्ता की ८५ प्रकृतियों में से ७२ प्रकृतियों का और चरम समय में १३ प्रकृतियों का नाश करके अरहंत भगवान मोक्षधाम

को (सिद्धशिला को) पधारते हैं।

प्र. ६६७. चौदहवें गुणस्थान में बंध कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६६७. तेरहवें गुणस्थान में जो एक सातावेदनी का बंध होता था; उसकी उसी गुणस्थान में व्युच्छित्ति होने से यहाँ किसी का भी बंध नहीं होता।

प्र. ६६८. चौदहवें गुणस्थान में उदय कितनी प्रकृतियों का होता है?

उ. ६६८. तेरहवें गुणस्थान में जो **४२** का उदय होता है; उनमें से व्युच्छित्ति प्रकृति तीस को (वेदनीय **१**, वज्र वृषभनाराचसंहनन **१**, निर्माण **१**, स्थिर **१**, अस्थिर **१**, शुभ **१**, अशुभ **१**, सुस्वर **१**, दुःस्वर **१**, प्रशस्तविहायोगति **१**, अप्रशस्त विहायोगति **१**, औदारिकशरीर **१**, औदारिकअंगोपांग **१**, तैजसशरीर **१**, कार्माणशरीर **१**, समचतुरस्त्रसंस्थान **१**, न्यग्रोध **१**, स्वाति **१**, कुब्जक **१**, वामन **१**, हुंडक **१**, स्पर्श **१**, रस **१**, गंध **१**, वर्ण **१**, अगुरुलघुत्व **१**, उपघात **१**, परघात **१**, उच्छ्वास **१**, और प्रत्येक को) घटाने पर शेष रहीं बारह प्रकृतियों का (वेदनीय **१**, मनुष्यगति **१**, मनुष्यायु **१**, पंचेन्द्रियजाति **१**, सुभग **१**, त्रस **१**, बादर **१**, पर्याप्त **१**, आदेय **१**, यशःकीर्ति **१**, तीर्थंकरप्रकृति **१**, और उच्चगोत्र **१**, का) उदय होता है।

प्र. ६६९. चौदहवें गुणस्थान में सत्त्व कितनी प्रकृतियों का रहता है?

उ. ६६९. तेरहवें गुणस्थान की तरह इस गुणस्थान में भी **८५** प्रकृतियों का सत्त्व है, परन्तु द्विचरम समय में **७२** और अन्तिम समय में **१३** प्रकृतियों का सत्त्व नष्ट करके अरहंत भगवान मोक्ष को पधारते हैं।

इति पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः॥ ५॥

ग्रंथकर्त्ता का अन्तिम वक्तव्य

दोहा

वंदौं श्रीमहावीरजिन, वर्द्धमान गुणखान।
भव्यसरोजसमूहरवि, करन सकल कल्याण॥ १ ॥
प्रांत ग्वालियर में बसै, भिंड नगर शुभथान।
श्रीयुत माधवसिंह नृप, न्याय नीति गुणखान॥ २ ॥
अर्गलपुरवासी बणिक, जाति बरैया जान।
लछमन सुत गोपाल तहँ, कीनी आय दुकान॥ ३ ॥
इन्द्रप्रस्थवासी सुजन, मोतीलाल सुजान।
उदासीन संसारसों, खोजत निज कल्याण॥ ४ ॥
आये या पुर भिंड में, ढूंढ़त तत्त्वज्ञान।
तिन निमित्त लघुग्रंथ यह, रच्यौ स्वपरहित जान॥ ५ ॥
श्रीयुत पन्नालालजी, अतिसज्जन गुणवान।
तिन निज काज विहाय सब, करी सहाय सुजान॥ ६ ॥
अल्पबुद्धि मम विषय यह, जिनसिद्धांत महान।
भूल देखिके शोधियों, करियो क्षमा सुजान॥ ७ ॥
जो सज्जन इस ग्रंथ को, पढ़ैं नित्य धरि ध्यान।
ते श्रीजिनसिद्धान्त में, करें प्रवेश सुजान॥ ८ ॥
विक्रम संवत सहस इक, नौ सै छयासठि जान।
कृष्णपक्ष श्रावण प्रथम, तिथि नवमी दिन भान॥ ९ ॥
जिनसिद्धान्तप्रवेशिका, या दिन पूरन जान।
पढहु पढावहु चिर जियहु, यावचन्द्रसुभान॥ १० ॥

।। इति श्री जैन सिद्धांत प्रवेशिका समाप्ता: ॥

विषयानुक्रमाणिका

अ

अकिंचित्कर हेत्वाभास 50
अकिंचित्कर हेतवाभास के भेद 51
अगुरुलघुत्वगुण 122
अगुरुलघुत्वप्रतिजीवी गुण 243
अगुरुलघु नामकर्म 304
अघातियाकर्म 340
अघातियाकर्म कितने और कौन-कौन से हैं ? 349
अचक्षुदर्शन 213
अतिव्याप्ति दोष 10
अत्यन्ताभाव 185
अधर्मद्रव्य 142
अद्धापल्य 363
अध:करण 637
अध:करण का दृष्टान्त 640
अधोलोक 577
अनध्यवसाय 84
अनन्तानुबंधिकषायोदयजनित अविरति से किन-किन प्रकृतियों का बंध होता है 436
अनन्तानुबंधी कषाय 270
अनादेय नामकर्म 327
अनात्मभूतलक्षण 5
अनाहारक जीव किस किस अवस्था में होता है 529
अनिवृत्तिकरण 639
अनुभागबंध 369
अनुभागरचना का क्रम 400
अनुमान 41
अनुमान के अंग 59
अनुमानबाधित 56
अनुजीवीगुण 178
अनुजीवीगुण के भेद 186
अनैकांतिक हेत्वाभास 46
अन्त: करणरूप उपशम 375
अन्तर्मुहर्त्त 365
अन्तरायकर्म 335
अन्तरायकर्म के भेद 336
अन्तिम गुणहानि 394
अन्यगुणहानियो के द्रव्य का परिणाम 395
अन्योन्याभ्यस्तराशि 393
अन्योन्याभाव 184
अन्वयदृष्टान्त 65
अन्वयव्यतिरेकी हेतु 72
अपकर्षण 387
अपर्याप्ति नामकर्म 316
अपूर्वकरण 638
अप्रतिष्ठित प्रत्येक 504
अप्रत्याख्यानावरण 270

अप्रत्याख्यानावरणकषायोदयजनित अविरति से किन किन प्रकृतियों का बंध होता है? 437
अप्रमत्तविरतगुणस्थान 624
अप्रमत्तविरतगुणस्थान के भेद 625
अप्रमत्तगुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है? 641
'' उदय '' 642
'' सत्व '' 643
अबाधित 39
अभव्यत्व गुण 230
अभाव 180
अभाव के भेद 181
अयशः कीर्तिनाम कर्म 329
अयोगकेवली नामक चौदहवां गुणस्थान 666
अयोग केवली गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है 667
'' उदय '' 668
'' सत्व '' 669
अर्थपर्याय 154
अर्थपर्याय के भेद 155
अर्थावग्रह 206
अर्द्धनाराचसंहनन 296
अभिभाग प्रतिच्छेद 383
अलक्ष्य 11
अलोकाकाश 165
अवधिदर्शन 214
अवधिज्ञान 22
अवगाह प्रतिजीवीगुण 242
अवग्रह 200
अवग्रहादिज्ञान दोनों ही प्रकार के पदार्थों में होते हैं या कैसे? 205
अवाय 202
अवान्तर सत्ता 193
अविनाभावसंबंध 35
अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान 612
अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में बंध कितनी प्रकृतियों का होता है? 613
'' '' उदय '' 614
'' '' सत्व '' 615
अविरति 428
अविरति के भेद 429
अव्याप्ति दोष 9
अव्याबाधप्रतिजीवी गुण 241
अशुभ नामकर्म 321
असंप्राप्तासृपाटिका संहनन 298
असंभवदोष 12
असली सुख का स्वरूप 582
असली सुख संसारी को क्यों नहीं होता? 583
असली सुख कब मिल सकता है? 584
असमर्थ कारण 406
असद्भूतव्यवहारनय 103
असिद्ध 40
असिद्धहेत्वाभास 44
अस्तिकाय 175
अस्तिकाय के भेद 176–177

अस्तित्वगुण 118

आ

आकाश द्रव्य 143
आकाश के भेद 162
आकाश का स्थान 163
आगमप्रमाण 73
आगमबाधित 57
आठवें गुणस्थान में बंध कितनी प्रकृतियों को होता है 644
'' '' उदय '' 645
'' '' सत्व '' 646
आठोंकर्मों की स्थिति 359–360
आतापनामकर्म 307
आत्मभूतलक्षण 4
आदेयनामकर्म 326
आनुपूर्वीनामकर्म 303
आप्त 74
आभ्यन्तरक्रिया 219
आभ्यन्तर उपकरण 482
आभ्यन्तर निर्वृत्ति 479
आयुकर्म 274
आयुकर्म के भेद 275
आवली 366–603
आस्रव 401
आस्रव के भेद 402
आस्रवों के स्वामी कौन-कौन हैं? 446
आहार 527
आहारकशरीर 135
आहारमार्गणा के भेद 528
आहारवर्गणा 132
आज्ञानिकमिथ्यात्व 426

इ

इतरनिगोद 508
इन्द्रिय 473
इन्द्रिय के भेद 474
इष्ट 38

ई

ईहा 201
ईर्यापथ आस्रव 445

उ

उच्चगोत्र कर्म 333
उच्छ्वास नामकर्म 310
उत्कर्षण 386
उत्पाद 158
उदय 371
उदयाभावी क्षय 385
उदाहरण 62
उदीरणा 372
उद्योत नामकर्म 308
उपकरण 480
उपकरण के भेद 481
उपघात नामकर्म 305
उपचरितव्यवहारनय अथवा उपचरित असद्भूतव्यवहारनय 104
उपनय 67
उपपादजन्म 537
उपयोग 463–486
उपयोग के भेद 464
उपशम 373

उपशम के भेद 374
उपशम श्रेणी 630
उपशमश्रेणी के कौन–कौन से गुणस्थान हैं 634
उपशान्तमोह गुणस्थान 654
उपशान्तमोह गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है? 655
" " उदय " 656
" " सत्व " 657
उपादान कारण 409

ऊ

ऊर्ध्वलोक 578

ऋ

ऋजुसूत्रनय 97

ए

एकत्वप्रत्यभिज्ञान 31
एकमुहूर्त्त के श्वासोच्छ्वास 368
एकेन्द्रिय के 42 भेद 546
एवंभूत नय 100

ऐ

ऐकान्तिक मिथ्यात्व 422

औ

औदयिक भाव 455
औदयिकभाव के भेद 460
औदारिक शरीर 133
औपशमिक भाव 452
औपशमिक भाव के भेद 457

क

कर्म 248
कर्मप्रकृति 148 के बंध का हिसाब 442
कर्मभूमि के जीव के 12 भेद 550
कल्पातीत देव 561
कल्पातीत देवों के भेद 563
कल्पोपपन्न 560
कल्पोपपन्न देवों के भेद 562
कषाय 221–432–514
कषाय के भेद 268–515
कषाय के उदय से कितनी प्रकृतियों का बंध होता है 440
काय 494
कारण 403
कारण के भेद 404
कार्माण शरीर 139
कार्माणवर्गणा 138
कालद्रव्य 144
कालद्रव्य के भेद 145
कालद्रव्य के भेद और स्थिति 169
किन किन जीवों के कौन–कौन सा जन्म होता है? 540
" " " लिंग 541
किन किन जीवों के कौन–कौन सी इन्द्रियाँ होती हैं? 493
कीलक संहनन 297
कुब्जक संस्थान 289
केवलदर्शन 215
केवलव्यतिरेकी हेतु 71
केवलज्ञान 25
केवललान्वयी हेतु 70
कोड़ाकोड़ी 361

कौन-कौन से गुणस्थानों का क्या क्या निमित्त हैं? 595
क्रमभावी विशेष? 79

ग

गति 471
गति के भेद 472
गति नामकर्म 278
गर्भजन्म 538
गर्भज पंचेन्द्रिय के 16 भेद 549
गंध नामकर्म 300
गुण 113
गुण के भेद 114
गुणस्थान 592
गुणस्थानों के 14 नाम 593
गुणस्थानों के ये नाम होने का कारण 594
गुणहानि 390
गुणहानि आयाम 391
गोत्र व गोत्र के भेद 330-331

घ

घतियाकर्म 339
घतियाकर्म कितने और कौन-कौन से हैं? 348
घ्राणेन्द्रिय 490

च

चय 398
चयका परिमाण निकालने की रीति 399
चक्षुदर्शन 212
चक्षुरिन्द्रिय 491
चारित्र 217
चारित्र के भेद 222
चारित्र मोहनीय 266
चारित्रमोहनीय के भेद 267
चारित्रमोहनीय की २१ प्रकृतियों के उपशम तथा क्षय करने के लिये आत्मा के कौन से परिणाम निमित्त कारण हैं? 636
चेतना 188
चेतना के भेद 189

ज

जन्म के भेद 536
जाति 279
जाति नामकर्म 280
जीवद्रव्य 125
जीवद्रव्य कितने और कहाँ हैं? 171
जीव का आकार 172
जीव के भेद 245
जीवत्व गुण 231
जीव के अनुजीवीगुण 186
जीव के प्रतिजीवीगुण 187
जीव के असाधारण भाव 451
जीव विपाकी कर्म 343
जीवविपाकी प्रकृति कितनी और कौन-कौन है? 354
जीवसमास 542
जीवसमास के भेद 543
जीवों के प्राणों की संख्या 236
ज्योतिष्क देवों का स्थान 573
ज्योतिष्क देवों के भेद 558

त

तर्क 33
तिर्यंच के 85 भेद 544
तीर्थंकरनाम कर्म 330
तैजस कार्माण शरीरों के स्वामी 140
तैजस वर्गणा 136
त्रस 495
त्रस जीव कहां रहते हैं 568
त्रस नामकर्म 311

द

दुर्भग नामकर्म 323
दर्शन कब होता है? 211
दर्शनचेतना 190
दर्शनचेतना के भेद 194
दर्शनमार्गणा के भेद 519
दर्शनमोहनीय 261
दर्शनमोहनीय के भेद 262
दर्शनावरण 255
दर्शनावरण के भेद 256
दर्शनोपयोग के भेद 465
दुःस्वर नामकर्म 325
दृष्टान्त 63
दृष्टान्त के भेद 64
देवों के दो भेद 554
देवों के विशेष भेद 555
देशघाति कर्म 342
देशघाति प्रकृति कितनी और कौन-कौन सी हैं? 351
देशचारित्र 224
देशविरत नामक पांचवां गुणस्थान 616
देशविरत गुणस्थान में बंध कितनी प्रकृतियों को होता है? 617
" " उदय " 618
" " सत्व " 619
दोनों आस्रवों के स्वामी कौन-कौन हैं 446
दोनों श्रेणियों में कौन-कौन से जीव चढ़ते हैं 633
द्रव्य 112
द्रव्य के भेद 124
द्रव्यत्वगुण 120
द्रव्यनिक्षेप 110
द्रव्यप्राणों के भेद 234
द्रव्यबंध 410
द्रव्यबंध का निमित्त कारण 412
द्रव्यबंध का उपादान कारण 413
द्रव्यार्थिक नय 90
द्रव्यार्थिक नय के भेद 92
द्रव्यास्रव 417
द्रव्यास्रव के भेद 443
द्रव्येन्द्रिय 475
द्रव्येन्द्रियों के भेद 487
द्रव्यों के विशेष गुण 161
द्वितीयोपशमसम्यकत्व 602
द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि जीव कौन सी श्रेणी चढ़ता है 633

ध

धर्मद्रव्य 141
धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्य का

विशेष 167

धारणा 203

ध्रौव्य 160

न

नय 85

नय के भेद 86

नवमें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है? 647

'' '' उदय '' 648

'' '' सत्व '' 649

नाना गुणहानि 392

नामकर्म 276

नामकर्म के भेद 277

नामनिक्षेप 107

नामनिक्षेप स्थापनानिक्षेप में भेद क्या है? 109

नारकियों के दो भेद 553

नारकियों के विशेष भेद 564

नारकी जीवों का स्थान 571

नाराच संहनन 295

निगमन 68

नित्यनिगोद 507

निमित्तकारण 408

निर्जरा 588

निर्माणकर्म 282

निर्वृत्ति 476

निर्वृत्ति के भेद 477

निश्चय नय 87

निश्चय काल 146

निश्चय नय के भेद 89

निषेक 379

निषेकहार 397

निक्षेप 105

निक्षेप के भेद 106

नीचगोत्र कर्म 334

नैगम नय 93

नोकषाय के भेद 269

न्यग्रोधपरिमंडल 287

प

पदार्थ जानने के उपाय 1

परघात नामकर्म 306

परमाणु 128

परोक्ष प्रमाण 26

परोक्ष प्रमाण के भेद 27

परोक्ष मतिज्ञान के भेद 198

पर्याप्ति कर्म 313

पर्याप्ति 314

पर्याप्ति के भेद 315

पर्याय 148

पर्याय के भेद 149

पर्यायार्थिक नय 91

पर्यायार्थिक नय के भेद 96

पक्ष 47

पंचेन्द्रिय तिर्यंच कहाँ-कहाँ रहते हैं? 570

पापकर्म 338

पाप प्रकृति कितनी और कौन-कौन सी हैं? 356

पारिणामिकभाव 456

पारिणामिक भाव के भेद 461

पारमार्थिक प्रत्यक्ष 18
पारमार्थिक प्रत्यक्ष के भेद 19
पुण्यकर्म 337
पुण्यप्रकृति कितनी और कौन-कौन सी हैं? 357
पुण्यास्त्रव और पापास्त्रव का कारण 447
पुद्गलद्रव्य 126
पुद्गल के भेद 127
पुद्गलद्रव्य की संख्या और उनकी स्थिति 170
पुद्गलविपाकी कर्म 344
पुद्गलविपाकी प्रकृति कितनी और कौन-कौन सी हैं 355
प्रकृतिबंध 251
प्रकृतिबंध के भेद 252
प्रकृतिबंध और अनुभागबंध में क्या भेद है? 418
प्रकृतिबंध में विशेषता 419
प्रकृतिबंध के कारणत्व की अपेक्षा आस्त्रव के भेद 420
प्रतिज्ञा 60
प्रतिजीवी गुण 179
प्रतिजीवी गुण के भेद 187
प्रत्यभिज्ञान 29
प्रत्यभिज्ञान के भेद 30
प्रत्यक्ष 15
प्रत्यक्ष के भेद 16
प्रत्यक्षबाधित 55
प्रत्याख्यानावरण कर्म 272
प्रत्याख्यानावरणकषोदयजनित अविरति से किन किन प्रकृतियों का बंध होता है 438
प्रत्येक नामकर्म 317
प्रत्येक वनस्पति 500
प्रत्येक वनस्पति के भेद 502
प्रत्येक गुणहानि के द्रव्यों का परिणाम 396
प्रथमोपशमसम्यक्त्व 601
प्रदेश 168
प्रदेशवत्वगुण 123
प्रदेशबंध 370
प्रध्वंसाभाव 183
प्रमत्तविरत नामक छट्ठा गुणस्थान 620
प्रमत्तविरत गुणस्थान में बंध कितनी प्रकृतियों का होता है? 621
" " उदय " 622
" " सत्व " 623
प्रमाण 13
प्रमाण के भेद 14
प्रमाण का विषय 75
प्रमाणाभास 80
प्रमाणाभास के भेद 81
प्रमाद 430
प्रमाद के भेद 431
प्रमाद से कितनी प्रकृतियों का बंध होता है? 439
प्रमेयत्व गुण 121
प्रागभाव 182

प्राण व उसके भेद 232–233

ब

बंध 130
बंध के भेद 249
बंध के कारण 250
बंधन नामकर्म 283
बल प्रमाण के भेद 239
बाधितविषय हेत्वाभास 53
बाधितविषय हेत्वाभासके भेद 54
बाह्यक्रिया 218
बाह्यनिर्वृत्ति 478
बाह्योपकरण 483

भ

भवनवासी देवों के भेद 556
भवनवासी तथा व्यंतरों का स्थान 572
भवविपाकी कर्म 345
भवविपाकी प्रकृति कितनी और कौन–कौन सी हैं? 353
भव्यत्वगुण 229
भव्यमार्गणा के भेद 521
भवनवासी तथा व्यंतरों का स्थान 572
भावनिक्षेप 111
भावप्राण 235
भावप्राण के भेद 237
भावबंध 411
भावबंध का निमित्तकारण 414
भावबंध का उपादान कारण 415
भावास्त्रव 416
भावेन्द्रिय 484
भावेन्द्रिय के भेद 237
भाषावर्गणा 137
भोगभूमि के जीवों के भेद 551

म

मतिज्ञान 196
मतिज्ञान के भेद 197
मतिज्ञान के दूसरे भेद 199
मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थों के भेद 204
मध्यलोक 579
मध्यलोक का विशेष स्वरूप 580
मन:पर्यय ज्ञान 23
मनुष्यों का निवास 575
मनुष्यों के 9 भेद 552
महासत्ता 191
मार्गणा 469
मार्गणा के भेद 470
मिथ्यात्व 421
मिथ्यात्व के भेद 422
मिथ्यात्व की प्रधानता से प्रकृतियों का बंध भेद 435
मिथ्यात्व गुणस्थान का स्वरूप 596
मिथ्यात्व 263
मिथ्यात्वगुणास्थान में कौन–कौन सी प्रकृतियों का बंध होता है? 597
'' '' उदय होता है?'' 598
'' '' सत्व होता है? '' 599
मिश्र गुणस्थान 608
मिश्र गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों

का बंध होता है? 609
'' '' उदय '' 610
'' '' सत्व '' 611
मुक्तजीव 247
मुहूर्त्त 364
मोहनीय कर्म 259
मोहनीय कर्म के भेद 260
मोक्ष का स्वरूप 585
मोक्षप्राप्ति का उपाय 586
मोक्ष जाने वालों की गति 535

य

यथाख्यात चारित्र 226
यशस्कीर्ति नामकर्म 328
योग 220–433–510
योग के भेद 434–511
योग के निमित्त से किस प्रकृति का बंध होता है? 441

र

रत्नत्रय की एकता युगपत् होती है या क्रम से? 590
रत्नत्रय के पूर्ण गुणों की एकता होने का क्रम किस प्रकार से है? 591
रस नामकर्म 301
रसनेन्द्रिय 488

ल

लब्धि 485
लक्षण 2
लक्षण के भेद 3
लक्षणाभास 6
लक्षण के दोष 7
लक्ष्य 8
लेश्या 462
लेश्यामार्गणा के भेद 520
लोक की मोटाई वगैरह 166
लोक के भेद 576
लोकाकाश 164
लोकाकाश के बराबर जीव 173

व

वज्रनाराच संहनन 294
वज्रवृषभनाराच संहनन 293
वनस्पति के भेद 499
वर्ग 382
वर्गणा 381
वर्ण नामकर्म 299
वस्तुत्व गुण 119
व्यतिरेकदृष्टान्त 66
व्यक्ताव्यक्त पदार्थों के भेद 209
व्यय 159
व्यवहारकाल 147
व्यवहारनय (द्रव्यार्थिक नयका भेद) 95
व्यवहारनय (उपनय) 88
व्यवहारनय के भेद 101
व्यंजनपर्याय 150
व्यंजनपर्याय के भेद 151
व्यंजनावग्रह व उसका विशेष 207–208
व्यंतरों के भेद 557
बादर 497
बादर एकेन्द्रिय जीव कहां

रहते हैं? 567

बादर और सूक्ष्म जीव 509

वामनसंस्थान 290

व्याप्ति 34

विकलत्रय के 9 भेद 547

विकलत्रय कहाँ रहते हैं? 569

विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष 20

विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष के भेद 21

विग्रहगति 347–530

विग्रहगति के भेद 532

विग्रहगति में कौन सा योग होता है? 531

विग्रहगति में अनाहारक अवस्था का समय 534

विग्रहगतियों का काल 533

विपक्ष 49

विपरीत मिथ्यात्व 424

विपयर्य 83

विभाव अर्थपर्याय 157

विभाव व्यंजनपर्याय 153

विरूद्ध हेत्वाभास 45

विशेष 76

विशेष के भेद 77

विशेषगुण 116

विहायोगति नामकर्म 309

वीर्य 228

व्युच्छित्ति 605

वेद व वेद के भेद 512–513

वेदनीय कर्म व उसके भेद 257–258

वैक्रियिक शरीर 134

वैनयिकमिथ्यात्व 427

वैभाविक गुण 240

वैमानिकदेवों के भेद 559

वैमानिकदेवों का स्थान 574

श

शब्दनय 98

शरीर नामकर्म 281

शक्तिशब्द की इष्टता 384

श्वासोच्छ्वास 367

शुभ नामकर्म 320

शुभयोग और अशुभयोग 448

शुभयोग पापास्रव का भी कारण ठहरा 450

शुभयोग में पापकृतियों का आस्त्रव होता है या नहीं? 449

श्रुतज्ञान 210

श्रेणी किसको कहते हैं? 629

श्रेणी के भेद 630

श्रेणी चढ़ने का पात्र कौन है 628

श्रोत्रेन्द्रिय 492

स

सकलचारित्र 225

सकलपारमार्थिक प्रत्यक्ष 24

सदवस्थारूप उपशम 376

सद्भूतव्यवहार नय 102

सपक्ष 48

सप्रतिष्ठित प्रत्येक 503

समयप्रबद्ध 389

समचतुरस्त्र संस्थान 286
समभिरूढ़ नय 99
समर्थ कारण 405
समुद्घात 174
सम्मूर्च्छन जन्म 539
सम्मूर्च्छन के 69 भेद 545
सम्मूर्च्छन पंचेन्द्रिय के 18 भेद 548
सम्यक्त्व 522
सम्यक्त्व मार्गणा के भेद 523
सम्यक्प्रकृति 265
सम्यक्मिथ्यात्व 264
सम्यक्त्व गुण 216
सयोगकेवली गुणस्थान 662
सयोगकेवली गुणस्थान में बंध कितनी प्रकृतियों का होता है? 663
'' '' उदय '' 664
'' '' सत्व '' 665
सर्व घातिकर्म 341
सर्वघातिया प्रकृति कितनी और कौन-कौन सी है? 350
सहकारीसामग्री के भेद 407
सहभावी विशेष 78
संक्रमण 388
संग्रहनय 94
संघात नामकर्म 284
संज्वलन कषाय 273
संयम 517
संयम मार्गणा के भेद 518
संज्ञा 467-525
संज्ञा के भेद 468
संज्ञी 524
संज्ञी मार्गणा के भेद 526
संवर 587
संवर, निर्जरा होने का उपाय 589
संशय 82
संसार में सुख क्यों नहीं होता 581
संसारी जीव 246
संस्थान नामकर्म 285
संहनन नामकर्म 292
सागर 362
सात पृथ्वियों के नाम 565
सातिशय अप्रमत्तविरत 627
सादृश्यप्रत्यभिज्ञान 32
साधन 36
साध्य 37
साधारण नामकर्म 318
साधारण वनस्पति 501
साधारण वनस्पति कहाँ है? 505
साधारण वनस्पति के भेद 506
सामान्य गुण 115
सामान्य गुण के भेद 117
साम्परायिक आस्त्रव 444
सांशयिक मिथ्यात्व 425
सासादन गुणस्थान 600
सासादन गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है? 604
'' '' उदय '' 606
'' '' सत्व '' 607
सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष 17
सिद्धसाधन 52
सुख 227
सुभग नामकर्म 322

सुस्वर नामकर्म 324
सूक्ष्म 498
सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों का स्थान कहाँ हैं? 566
सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण 244
सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान 650
सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानों में कितनी प्रकृतियों का बंध होता है? 651
'' '' उदय '' 652
'' '' सत्व '' 653
स्कंध 129
स्कंध के भेद 131
स्थापनानिक्षेप 108
स्थावर 496
स्थावर नामकर्म 312
स्थितिबंध 358
स्थिर और अस्थिर नामकर्म 319
स्पर्द्धक 380
स्पर्श नामकर्म 302
स्पर्शनेन्द्रिय 488
स्मृति 28
स्वभावअर्थपर्याय 156
स्वभावव्यंजनपर्याय 152
स्ववचनबाधित 58
स्वरूपाचरण चारित्र 223
स्वस्थानअप्रमत्तविरत 626
स्वाति संस्थान 288

ह

हुंडक संस्थान 291
हेतु 61
हेतु के भेद 69
हेत्वाभास 42
हेत्वाभास के भेद 43

क्ष

क्षपकश्रेणी 632
क्षपकश्रेणी के कौन-कौन से गुणस्थान हैं? 635
क्षय 377
क्षायिक भाव 453
क्षायिक भाव के भेद 458
क्षायिक सम्यग्दृष्टि कौन सी श्रेणी चढ़ता है? 633
क्षायोपशमिक भाव 454
क्षायोपशमिक भाव के भेद 459
क्षीणमोह गुणस्थान 658
क्षीणमोह गुणस्थान में बंध कितनी प्रकृतियों का होता है? 659
'' '' उदय '' 660
'' '' सत्व '' 661
क्षेत्रविपाकी 346
क्षेत्रविपाकी प्रकृति कितनी और कौन-कौन सी हैं? 352

ज्ञ

ज्ञानचेतना 192
ज्ञानचेतना के भेद 195
ज्ञानमार्गणा के भेद 516
ज्ञानोपयोग के भेद 466
ज्ञानावरण 253
ज्ञानावरण के भेद 254

❖ ❖ ❖

पाठक के प्रयोग हेतु